(सर्वाधिकार सुरक्षित)
http://www.jainkosh.org

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

पञ्चास्तिकाय प्रवचन

चतुर्थ, पंचम व षष्ठ भाग

प्रवक्ता:
अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ
पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द महाराज"

प्रकाशक:
खेमचन्द जैन सर्राफ,
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

स्वाध्यायार्थी बन्धु, मन्दिर एवं लाइब्रेरियोंको
भारतवर्षीय वर्णी जैनसाहित्य मन्दिरकी ओरसे अर्धमूल्यमें ।

प्रथम संस्करण १०००] सन् १९७५ लागत [१३) रु०

Version 1

सहजानंद शास्त्रमाला

पंचास्तिकाय संग्रह प्रवचन

भाग-6

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

आत्म-कीर्तन

http://www.jainkosh.org

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री शान्तमूर्ति पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज द्वारा रचित

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ।।टेक।।

अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहं रागवितान ।
मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान ।।१।।

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।२।।

सुख दुःख दाता कोइ न आन, मोह राग दुःख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहिं लेश निदान ।।३।।

जिन शिव ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुंचूं निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ।।४।।

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूं अभिराम ।।५।।

०००O०००

[धर्मप्रेमी बंधुओ ! इस आत्मकीर्तनका निम्नांकित अवसरों पर निम्नांकित पद्धतियों में भारतमें अनेक स्थानोंपर पाठ किया जाता है । आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोंके बीचमें श्रोतावों द्वारा सामूहिक रूपमें ।
२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरपर ।
३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समय छात्रों द्वारा ।
४—सूर्योदयसे एक घंटा पूर्व परिवारमें एकत्रित बालक, बालिका, महिला तथा पुरुषों द्वारा ।
५—किसी भी आपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छंदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओं द्वारा ।

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

पञ्चास्तिकाय प्रवचन षष्ठ भाग

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज

इदसदवंदिरणाणं तिदुअणहिदमधुरविसदवक्काणं ।
अंतातीदगुणाणं णमो जिणाणं जिदभवाणं ॥
जीवसहावं णाणं अप्पडिहददंसणं अणण्णमयं ।
चरियं च तेसु णियदं अत्थित्तमणिंदियं भणियं ॥१५४॥

नव पदार्थाधिकारके वर्णनके पश्चात् अब मोक्षपद्धति, मोक्षस्वरूप निश्चयमोक्षमार्ग, व्यवहारमोक्षमार्ग आदिके वर्णनके द्वारा मोक्षमार्गके विस्तार करने वाली चूलिका कही जा रही है।

मोक्षमार्ग और मोक्ष—अप्रतिहत ज्ञान और अप्रतिहत दर्शन तो जीवका स्वभाव है और वह जीवसे अभिन्न है, और उस स्वभावमें नियत हो जाना यह चारित्र है। इस प्रकार दर्शन, ज्ञान और चारित्र मोक्षका मार्ग है। इन सबको एक शब्दमें कहा तो यों कह लीजिए कि जीवके स्वभावमें नियत रहनेका नाम है मोक्षमार्ग। जीवका स्वभाव प्रतिभास है। अपने आपमें अन्तःदृष्टि करके देखो कि वह मैं क्या हूं, जो कुछ समझता हूं, जानता हूं, चाहता हूं ? अन्तःदृष्टि करके देखो तो ऐसा समझने वाला कोई पदार्थ अतिसूक्ष्म विदित होगा। पत्थर, ढेला, हड्डी, मांसकी तरह पिण्डरूप पदार्थ नहीं है वह जो कि जाननहार है। जगतके अन्य सब पदार्थोंसे विलक्षण केवल जानन-देखनहार अमूर्त पदार्थ यह मैं आत्मपदार्थ हूं। मेरा स्वभाव तो, जिस स्वरूपसे इसका सत्त्व बना हुआ है वह स्वरूप है ज्ञान और दर्शन, जानन और देखन प्रतिभास। यह जीव अपने इस विशुद्ध प्रतिभासमें रहा करे, यही है मोक्षमार्ग। और इस प्रतिभासका फिर पूर्ण विकास हो जाय, ज्ञप्तिपरिवर्तन भी न रहे, उसका नाम है मोक्ष।

स्वभावका आलम्बन—यह ज्ञानदर्शन स्वभाव जीवसे अभिन्न है। यह तो जीवका स्वरूप, विशेष और सामान्य चैतन्यस्वभाव है। प्रतिभासमें जो विशेष तत्त्व है वह तो है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org
ज्ञान और प्रतिभासमें जो सामान्यतत्त्व है वह है दर्शन । ये दोनों जीवके स्वरूपभूत हैं । उनमें नियत होना, अवस्थित होना अर्थात् अगुरुलघुत्व गुणके कारण इस ही स्वभावमें उत्पादव्यय ध्रौव्यरूप रहकर इस केवलका निरपेक्ष अस्तित्व बना रहना—यही है मोक्षका मार्ग । यहाँ रागादिक परिणतियां नहीं हैं, इसी कारण यह भाव सर्वोत्कृष्ट है । यहाँ मोक्षमार्गको व संसार-मार्गको इन शब्दोंमें जानना कि स्वभावमें चलना सो तो मोक्षमार्ग है और परभावमें चलना सो है संसारमार्ग ।

द्विविध चरित्र—संसारी जीवोंमें दो प्रकारका चरित्र है । एक तो स्वचरित्र और एक परचरित्र । स्वभावमें अवस्थित अस्तित्वका नाम है स्वचरित्र और परभावमें अवस्थित स्वरूपका नाम है परचरित्र । स्वचरित्र तो उत्कृष्ट भाव है और परचरित्र जघन्य भाव है । अपने ही स्वभावमें उपयोगका स्थिर होना, परभावसे उपयोगका निवृत्त होना, यही है मोक्ष-मार्ग और आत्माका परम पुरुषार्थ । जीवका स्वभाव ज्ञान और दर्शन है । इस ज्ञान और दर्शनमें शक्तिकी दृष्टिसे इसे देखा जाय तो इन्हींको ही केवलज्ञान और केवलदर्शन कह लीजिए । समस्त वस्तुवोंमें अवस्थित अनन्त धर्मको एक साथ जाननेमें समर्थ केवलज्ञान है । यह आत्मा का गुण आत्मासे अनन्य है । इतना भी कहना कि ज्ञान और दर्शन आत्माका गुण है, यह भी आत्माका तोड़-मरोड़ किया जाता है और यह भी सम्यग्ज्ञानकी उत्कृष्ट दृष्टिमें शोभाकी बात नहीं है । उसे समझ भर लीजिए, यह ही ठीक कदम है, पर जो है उसका यों भेद करना, यह ज्ञान है, दर्शन है, यह आत्माका गुण है, ऐसा कहनेपर अनुभूतिमें जो बात आयी थी वह बात नहीं रही ।

गुणीमें गुणोंकी अभिन्नता—सहज शुद्ध सामान्य विशेष चैतन्यस्वरूप जीवास्तिकायसे ये ज्ञान दर्शन गुण भिन्न नहीं हैं । केवल नामसे भिन्न हैं, लक्षणसे भिन्न हैं, प्रयोजनसे भिन्न हैं, किन्तु द्रव्य वही है, क्षेत्र वही है, काल वही है, भाव वही है—परमार्थ । ज्ञानदर्शनस्वरूपमें और आत्मामें भेद नहीं है । यह भेदकथन जीवको इस निगाह तक भी दूर फेंक सकता है, जैसे कहा करते हैं कि घड़ेमें दही है, डिब्बामें दही है, तो जैसे यहाँ दो भिन्न-भिन्न चीजें हैं, डिब्बा अलग है, घी अलग है और फिर उसका आधार बताया । ऐसा तो आत्मामें और ज्ञान में नहीं है कि आत्मा कोई वस्तु है और उसमें फिर ज्ञान है । यदि ज्ञान अलग चीज है तो ज्ञानरहित आत्मा क्या है और आधारभूत आत्माके बिना ज्ञान क्या ? दोनोंका अभाव हो जाता है ।

गुणीसे गुणोंको भिन्न माननेपर आपत्ति—जैसे लोकव्यवहारमें कहते हैं कि भगोनेमें पानी भरा है, तो भगोना और पानी ये अलग-अलग चीजें हो गयीं । भगोना अलग है पानी अलग है और वह पानी भगोनेमें है, इस तरह यदि यों माना जाय कि आगमें गर्मी है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भगोनेकी तरह आग कोई स्वतंत्र हो और जलकी तरह गर्मी कुछ अलग बात हो और फिर आग गर्मीमें धरी हो, क्या ऐसा है ? यदि यों भिन्न-भिन्न हों तो यहाँ बतावो कि गर्मी तो अलग है, आग अलग है, तो गर्मी बिना आग क्या और आग बिना गर्मी रहे कहाँ ? दोनोंका अभाव हो जायगा। इसी प्रकार आत्मामें ज्ञान है, इसे अगर भिन्न रूपसे देखें जैसे कि कहनेमें भेद कर दिया जाय तो दोनोंका अभाव हो जायगा।

स्वचरित्रतामें मोक्षमार्ग—यह चैतन्यस्वरूप इस चेतनसे अभिन्न है, यह चेतन चैतन्यात्मक ही है, ऐसे जीवके स्वभावमें नियत हो जाना, अवस्थित हो जाना इसका नाम चरित्र है, और यही चरित्र मोक्षमार्ग है। कहा भी है कि स्वरूपमें चलना सो चरित्र है। चरित्र ही धर्म है, और धर्म नहीं है जहाँ समतापरिणाम हो, शान्ति हो। और समता शान्ति वहीं है जहाँ मोह और क्षोभसे रहित परिणाम हो। यह तो स्वचरित्रकी बात कही। अब संसारी जीवोंमें परचरितकी बात देखो। स्वतंत्र स्वभावके अनुरूप जो आचरण नहीं है। परपदार्थोंको उपयोगमें लाकर इष्ट काम भोगोंमें ही स्मरण चल रहा हो अर्थात् अपध्यान चल रहा हो, अमुक पदार्थ इष्ट है, अमुक चीज मुझे मिले, अमुक पदार्थ अनिष्ट है मुझसे दूर रहे, अमुकका नाश हो। किसी भी प्रकार मोह रागद्वेषरूप परिणतिसे परपदार्थोंमें यह उपयोग करे तो वह है परचरित, परभावपरिणमन। यह संसारमार्ग है।

स्वोन्मुखी व परोन्मुखी वृत्तिका परिणाम—यह जीव जन्म लेता है, मरता है, नये-नये शरीर ग्रहण करता चला आ रहा है। रागी द्वेषी दुःखी जो भव-भवसे इस प्रकार चला आ रहा है वह सब परभावपरिणमनका परिणाम है। परचरितकी दशा अत्यन्त जुदी है और स्वचरितकी दशा अलग है। स्वचरितमें झुकाव स्वका और परचरितमें झुकाव परका है। देखिये आत्मा सिवाय एक इतनी कलाके और कर ही क्या रहा है ? यह उपयोगस्वरूप है, जाननहार है, जानता है, पर जाननेकी पद्धति जहाँ परोन्मुखी हो गयी, संसारकी विडम्बना बढ़ती जाती है। जाननकी पद्धति जहाँ स्वोन्मुखी हो गयी बस वहाँ इसका मोक्षमार्ग बन जाता है।

संकटमुक्तिके लिये कर्तव्य—भैया ! जिन जीवोंको यह पता नहीं है कि संसारके संकटोंसे छूटनेका उपाय यह स्वाधीन आत्मोपयोग है वे जीव असारसंसारके कारणभूत मिथ्यात्व रागादिकमें ही लीन रहा करते हैं। अहो, इन रागादिक भावोंमें लीन होते हुए इन जीवोंका अनन्त काल व्यतीत हुआ है। इस प्रकार समय बितानेमें इन जीवोंको कोई लाभ नहीं है। हरदम, हर जगह असन्तोष, चिन्ता शोक अभिमान कषाय सभी उपद्रव इसे परेशान कर रहे हैं। संसारसे छुटकारा पानेमें ही लाभ है। संसारसे छुटकारा कैसे हो, उसके उपायमें जो पहिले कुछ वर्णन किया है उसके ही विस्ताररूप यह अधिकार चल रहा है। हमारा कर्तव्य है कि जो समस्त परपदार्थोंसे छूटा ही हुआ है ऐसे इस निज अंतस्तत्त्वकी भावना करें, इस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भावनाके प्रसादसे ये कर्मबन्धन तथा शरीरबन्धन स्वयं दूर हो जायेंगे।

जीवो सहावणियदो अणियदगुणपज्जओध परसमओ।
जदि कुणदि सगं समयं पब्भस्सदि कम्मबंधादो ॥१५५॥

परसमयकी विडम्बना—जीव यद्यपि निश्चयसे अपने स्वभावमें नियत है, फिर भी अनियत गुणपर्यायों सहित होता हुआ यह परसमय हो जाता है। अन्तः स्वभावदृष्टि करें तो जीव कब परमें स्थित है ? शरीर और यह जीव इस समय भी एक क्षेत्रावगाह है, और बंधन भी बन रहा है, लेकिन जीवके सत्त्वको देखो तो यह जीव शरीरमें कहाँ मौजूद है ? शरीरमें शरीर है, और जीवमें जीव है। किन्तु ऐसा मान तो नहीं रहा यह मोही प्राणी और जब यथार्थ रूपमें अपनेको नहीं मान रहा है तो उपयोगका बन्धन तो तत्काल ही है। और जीवमें ऐसा विभावपरिणमन हुआ कि इस तरहके परभावबन्धनका निमित्त पाकर यह शरीर कर्म बन्धन विडम्बित यों हो जाता है।

एकस्वरूपका द्विविध परिणमन—शुद्ध निश्चयसे तो यह जीव विशुद्ध ज्ञानदर्शनस्वभावी है, स्वभावमें नियत है, लेकिन मोहनीय कर्मोंके उदयवशसे जिसकी परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है, मोहादिक परिणामोंमें ही इस जीवकी अनुवृत्ति हो रही है। बार-बार लगना, सम्बंध रखना, लगाव रखना ऐसी अनुवृत्ति इस जीवमें अनादिकालसे चली आ रही है, जो कि वृत्ति इसके स्वभावसे विरुद्ध है। स्वभाववृत्ति तो ऐसी थी कि मोहरहित शुद्ध ज्ञान दर्शनरूप आत्माकी प्राप्ति करना, लेकिन कर रहा है यह मोहादिक विकारोंकी प्राप्तिको। सो नाना मतिज्ञानादिक विभाव गुणपर्यायोंमें और मनुष्य नारकी तिर्यञ्चदेव जैसी पर्यायोंमें यह यह परिणमकर परसमय बन रहा है। यही है संसारी जीवकी वर्तमान परिस्थिति, किन्तु जब यह जीव निर्मल विवेक ज्ञान भेदविज्ञानको उत्पन्न करने वाली अथवा निर्मल परमार्थ ज्योतिको उत्पन्न करने वाली जब अपनी परमकलाका अनुभव कर लेता है, केवल अपने आप अपने सत्त्वसे जो कुछ मुझमें है उस अंतस्तत्त्वका अनुभव करता है तब जानता है—ओह ! यह मैं हूं शुद्ध एक चैतन्यस्वभाव। अब यह ऐसे ही आत्माका बार-बार अनुभव करता है उस समय यह जीव स्वसमय बनता है, स्वचरित बनता है। तब ऐसा आचरण करने वाला जीव कर्मबन्धसे नियमसे मुक्त हो जायगा।

आत्मप्रतीतिका प्रकाश—भैया ! एक सीधीसी बात यहाँ यह जान लेना कि जैसे लोग अपने आपके बारेमें अधिकाधिक ऐसा अनुभव करते हैं कि मैं अमुक चंद हूं, अमुक प्रसाद हूं, अमुक वर्णका, जातिका हूं, अमुक गाँवका हूं, अमुकका पिता हूं, बेटा हूं आदिक रूपसे अपने आपमें कुछ अनुभव लगाया करता है। ये सारे अनुभव संसार बढ़ानेके कारण हैं, जन्ममरण की परम्पराके कारण हैं, जीवके अहितरूप हैं। इन कल्पनाओंमें आप केवल अपने भाव ही तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बना रहे हो। तो विरुद्ध भाव न बनाकर एक परमार्थ भाव बनायें तो इसमें जीवका हित है। किस प्रकारका परमार्थ भाव ? लो यह मैं समस्त पदार्थोंसे न्यारा केवल एक ज्योतिस्वरूप हूं। ऐसी दृष्टि दें तो कुछ लगता भी ऐसा है कि भीतरमें कुछ विलक्षण प्रकाश पड़ा हुआ है, जो प्रकाश इन दीपक, रत्न, सूर्य, चन्द्र आदि जैसा तो नहीं है, किन्तु इससे भी विलक्षण है, जिस प्रकाशमें ये सब प्रकाश भी समा जाते हैं, ऐसा अलौकिक ज्ञानप्रकाश मुझमें है, जिस प्रकाश बिना सूर्य चन्द्रके प्रकाश भी फीके हैं, अस्तित्व ही नहीं पाते हैं, जिस प्रकाशके कारण सूर्य चन्द्र भी सत् विदित होते हैं और कुछ शुद्ध विश्रामके साथ अपने आपमें अपने आपको जब लखते हैं तो यह निर्भार सूक्ष्म अमूर्त न्यारा आनन्दस्वरूप प्रतिभास अपनेको विदित होता है। उसका गुण नियत है, उसका यह अन्तर्वृत्ति परिणमन नियत है। यह ऐसा ही है, इसमें विभिन्नताएँ नहीं हैं, ऐसे नियत गुणपर्याय वाले जीवस्वभावमें अवस्थित होना इसका नाम है स्वसमय।

आत्माका बड़प्पन—स्वचरित्र ही मुक्तिका मार्ग है। लोग अपना बड़प्पन समझते हैं बहुतसे महल बन जायें, बड़ा वैभव इकट्ठा हो जाय, बहुतसी रकम जमा हो जाय; समाजमें, बिरादरीमें, देशमें लोग हमारी पूछ करने लगें, नाम लेने लगें, इन बातोंमें अपनी उत्कृष्टता जानते हैं, लेकिन ये सबकी सब बातें तो मोहकी नींदके स्वप्न हैं। जैसे स्वप्नकी बात ठहरती नहीं है, आँखें खुल जानेपर तो कुछ भी नहीं रहता है, ऐसे ही ये सारी कल्पनाएँ परवस्तुवोंके संचयके कारण अपने आपको बड़ा माननेकी कल्पनाएँ ये सब असार हैं, और जब ज्ञान जगता है, यथार्थ बात समझमें आती है तब ये चीजें कुछ ठहरती नहीं हैं। यहाँ कुछ है ही नहीं। उनसे बड़प्पन मत मानो। अपना महत्त्व मत इन बातोंमें मानिये। दुनिया जाने अथवा न जाने, यह परका ढेर इकट्ठा हो अथवा न हो, किन्तु यह मैं अपने आपके इस सहज ज्ञानानन्दस्वभावको पहिचान लूं और अपना लगाव इस स्वभावमें ही रक्खूं, ऐसा कर सका तो इससे बढ़कर काम लोकमें कुछ भी नहीं है।

व्यर्थ विकल्प—मान लो आपके यहाँ दो चार लाखका वैभव पड़ा हुआ है तो आप इतना ही अपना क्यों समझते हैं ? तीनों लोकमें जितने भी ढेर पड़े हुए हैं उन सबको अपना समझ लो ना। माननेमें फिर क्यों कंजूसी करते ? जब माननेकी हठ ही कर रहे हो। आप कहोगे वाह ! कैसे अपना मान लें। तीनों लोकका वैभव मेरे साथ तो नहीं है। अरे तो जो दो-चार लाखका धन आपके घरमें है वह भी तो आपके साथ नहीं है। आप जहाँ मरे तहाँ यह दो-चार लाखका भी धन छूट जायगा और यह तीनों लोकोंका भी सारा धन आपसे छूट जायगा। आपसे छूटा हुआ तो अब भी है जब तक आप इस भवमें भी जीवित हैं। इस वैभवसे आत्महितकी बात न मिलेगी। अपने आत्मस्वभावमें नियत होनेका यत्न करें।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वहितकी दिशा—भैया ! किसीने कुछ कह दिया तो क्या हो गया ? उसका परिणमन उसमें है। कोई प्रशंसा कर दे तो उससे यहाँ क्या लाभ है ? कोई निन्दा कर दे तो उससे यहाँ क्या हानि है ? लेकिन एक बात ध्यानमें रखिये—हम यदि किसीका अपमान कर दें, निन्दा कर दें तो उसमें हमारी हानि है। दूसरा कोई पुरुष मेरा अपमान करे तो उससे मेरा कोई बिगाड़ नहीं है। अपना ज्ञानबल बढ़ायें और सत्य बल समझें। धीरता रक्खें, क्षोभ होने ही न दें तो उससे क्या बिगाड़ होता है ? हम किसी दूसरेका अपमान कर दें, निन्दा कर दें तो उससे हमारा बिगाड़ इस ही भवमें हो चुका। इन परपदार्थोंके परिणमनसे अपना कुछ भी हित न मानें। अपने आपका स्वरूप अपने आपकी निगाहमें रहे और उसकी ओर ही लगाव रहे तो ऐसे पुरुषार्थमें ही अपना हित है, यही वास्तविक धर्मपालन है, यही मोक्षमार्ग है, यही विवेक है, यही समझदारी है, और इस दुर्लभ नरजीवनको सफल बनानेका यही एक मात्र सही उपाय है।

जो परदव्वम्मि सुहं असुहं रागेण कुणदि जदि भावं।
सो सगचरित्तभट्ठो परचरियचरो हवदि जीवो ॥१५६॥

परचरित्रता—जो जीव परद्रव्योंमें रागवश शुभ अथवा अशुभ परिणाम करता है वह जीव अपने आत्मीय शुद्ध आचरणसे भ्रष्ट होकर परसमयका आचरण करने वाला होता है। इस गाथामें परचारित्रमें लगे हुए जीवका स्वरूप बताया है। जो जीव मोहनीयके उदयके वश होकर रज्यमान उपयोग वाला होता है और परद्रव्योंमें शुभ अथवा अशुभ भावोंको धारण करता है वह पुरुष आत्मीय चारित्रसे भ्रष्ट होकर परचारित्रका आचरण करने वाला हुआ करता है। आत्मज्ञानसे शून्य पुरुष विषयभोगोंमें प्रवृत्ति करेगा, वह भी परचारित्र है। और आत्मज्ञानसे शून्य पुरुष दया परोपकार, सेवाके परिणाम करे वहाँ भी परचारित्र है। तथा आत्मज्ञानसे शून्य पुरुष धर्मके नामपर तप, भक्ति आदिक व्यवहारकार्य करे वह भी परचारित्र है। किसी परचारित्रमें शुभ परिणामोंकी प्रेरणा है और किसी परचारित्रमें अशुभ परिणामोंकी प्रेरणा है। जो आत्मीय आचरणसे भ्रष्ट होकर विकल्पात्मक प्रवृत्ति करना है वह सब परचारित्र है। क्योंकि स्वद्रव्यमें शुद्धोपयोगसे रहित स्वचारित्र है और परद्रव्यमें उपराग सहित उपयोगकी वृत्ति होना परचारित्र है।

स्वयंका वैपरीत्य—यह आत्मा शुद्ध ज्ञानपर्यायमें परिणत है। द्रव्यत्वके नातेसे अगुरुलघुत्व गुण हानि-वृद्धिसे जो स्वरूप सत्त्वके लिए अर्थपरिणमन होता है वह है शुद्ध गुण परिणमन। उसमें परिणत यह निज शुद्ध आत्मद्रव्य है। उसकी प्रतीतिसे भ्रष्ट होकर रागभावसे परिणमकर जो रागभाव निर्मल आत्माकी अनुभूतिसे अत्यन्त विपरीत है उसमें परिणमकर जो समस्त परद्रव्योंमें शुभ अशुभ भावोंको करता है वह अपने आचरणसे भ्रष्ट हो जाता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निज शुद्ध स्वरूपका साक्षी रहना, केवल देखन-जाननहार रहना अथवा उस परिणतिका भी आधारभूत शुद्ध ज्ञायकस्वभाव उसकी दृष्टि करना यह तो सम्यक् है। उसके ज्ञान और उसके रमणसे जब यह जीव अलग हो जाता है तो वहाँ स्वसम्वेदन नहीं रहता, किन्तु परकी ओर का विकल्प रहता है, वही परचारित्र है।

परचारित्रसे विडम्बना—इस जीवने अनादिसे लेकर अब तक परचारित्र ही किया और परचारित्र करता जा रहा है, परचारित्रसे विराम नहीं लेता। जिस भवमें जो कुछ मिला उसे ही अपूर्व और सर्वस्व मानकर उस ही में रम जाता है, और यह सुध भूल जाता है कि ऐसा और इससे भी बढ़कर अनेक वैभव समागम अनेक बार इस जीवने पाये हैं, भोगे हैं और छोड़े हैं। मिला कुछ तत्त्व नहीं उनसे। जैसे यहीं देख लो, जो लोग बड़े होकर, बूढ़े होकर गुजर गए हैं उनके बारेमें आज विचार करो कि कितने वर्षों तक उन्होंने कठिन श्रम किया, उद्यम किया, विकल्प किया, अंतमें उन्हें मिला क्या ? जो मरकर चले गए उन्हें मिला क्या ? सब अपने-अपने घरसे सम्बंधित स्वर्गीय पुरुषोंके सम्बंधमें सोच सकते हैं। उन्हें मिला क्या ? जैसे अंतमें उन्हें कुछ नहीं मिला, ऐसे ही जब समागम हैं। इस समय भी हमें कुछ नहीं मिल रहा है, मरनेके बाद तो यह बात स्पष्ट ही है कि कुछ न मिलेगा, पर जब तक जीवन है तब तक भी अपनेको किसी भी समागमसे कुछ मिल नहीं रहा है। केवल एक जिसमें जैसी योग्यता है मोह और रागकी उसके अनुकूल विकल्प ही मचाये जा रहे हैं।

धर्मपालन—शुद्ध विधिसे धर्मपालन करनेकी बात जिसके मनमें आये वह सत्पुरुष है, ज्ञानी है, विवेकी है, उत्कृष्ट पुरुष है। शुद्ध विधिसे धर्मपालन तब ही तो बनेगा जब अपने शुद्ध स्वरूपका भी भान होगा। धर्म कहीं बाहर नहीं करना है, हमारा धर्म अर्थात् स्वभाव व स्वभावावलम्बन मंदिरमें नहीं है, प्रतिमामें हमारा धर्म नहीं है, शास्त्रोंके पन्नोंमें, पोथियों में हमारा धर्म नहीं है। वहाँ ही दृष्टि गड़ाकर, विकल्प करके शुद्ध विधिका धर्मपालन न होगा। हमारा धर्म, हमारा स्वभाव हममें है, और हमारे धर्मका यह शास्त्र प्रतिपादन करता है इसलिए इसकी भक्ति, इसकी सेवा व्यवहारमें धर्मपालन है। हमारा जो धर्म है वैसा ही धर्म सब जीवोंमें है और जिन जीवोंने अपने धर्मका विकास कर लिया है ऐसे अरहंत प्रभु सिद्ध प्रभुका स्मरण अथवा अरहंतदेवकी मूर्ति स्थापित करके उसके माध्यमसे अरहंतदेवके गुणोंका स्मरण अर्थात् आत्माके धर्मका स्मरण हमारे धर्मकी याद दिलाता है, हमारे धर्मका स्पर्श कराता है, इस कारण वह सब धर्म है व्यवहारमें, लेकिन यह तो बतावो कि हमें धर्म कहाँ करना है ?

अज्ञानीको धर्माधारका परिचय—हमें धर्म बाहरमें किसी जगह नहीं करना है। भगवानमें हमें धर्म नहीं करना है, भगवान तो स्वयं धर्मस्वरूप हैं, और उनमें हम कर क्या

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org
सकते हैं, उनमें ही क्या किसी भी परवस्तुमें हम कर क्या सकते हैं। बाह्यक्षेत्रमें इसका उत्तर मत तलाशो। हमें धर्म हममें ही करना है। तो जब हम अपने यथार्थ निरपेक्ष परमार्थस्वरूप को समझें तब ही तो हम उस धर्मकी दृष्टि कर सकेंगे और धर्मरूप अपना अन्तः आचरण, सर्व श्रमोंसे रहित परमविश्रामरूप आचरण कर सकेंगे। ऐसे निज शुद्धस्वरूपका जिसको भान नहीं है ऐसा पुरुष ऐसा प्राणी परचारित्रचर हुआ करता है। उसे अपना शरण, अपना परमात्मा ज्ञात ही नहीं है। एक यही परचारित्रका काम करता चला आ रहा है यह जीव।

अधर्मसे निवृत्त होनेकी प्रेरणा—आज इस मनुष्यभवको इन बातोंमें निवृत्त होनेके लिए ऐसा ही समझ लो कि जहाँ हमने अनन्त भव पाये हैं भोगोंके लिए हम इस भवको गिनतीमें ही न लें, हमने यह पाया ही नहीं है, चलो यों ही मानकर और फिर हितमें सावधान होकर गुप्त ही अपने आपमें शुद्ध विधिसे धर्मपालनकी बात बना लें तो यह पुरुषार्थ काम देगा इस जीवको। किन्तु ये परचारित्रके पुरुषार्थ बाह्य विषयोंमें लगनेके ये पुरुषार्थ, ये श्रम, ये सब थोथे हैं, असार हैं, इनमें सारका नाम भी नहीं है। इन परचरित्रोंमें लगनेसे जीवका हित नहीं है, सर्वथा अहित है। अब अपनी वृत्ति बदलें और निज स्वभावकी ओर हम जितना झुक सकें उसका यत्न करें, हिम्मत बनायें।

शान्तिलाभका साहस—स्वभावमिलनकी हिम्मत बनानेमें सर्वप्रथम तो यह साहस करना होगा कि मेरा मेरे आत्माके स्वरूपके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। लाखोंका वैभव जो जो कुछ मिला है वह सब वैभव अत्यन्त न्यारा है। यह मिले, इससे भी शान्ति नहीं है। यह कम मिले उससे भी शान्ति नहीं, नहीं मिले उससे भी शान्ति नहीं। जब तक अज्ञानभाव बसा है तो प्रत्येक स्थितिमें यह अज्ञानी जीव ऐसी कल्पनाएँ करेगा ही कि जो अशान्तिको उत्पन्न करेंगी। वैभव न मिलता तो चाहमें झूर-झूरकर विकल्प बनाकर अपनेको परेशान कर लिया जाता। थोड़ा मिला है तो उससे भी अपनेको परेशान किया जा रहा है। बहुत मिल गया दृष्टि पसारकर देखो, करोड़ों आदमियोंसे वैभव आपके पास अधिक है तिसपर भी शान्ति नहीं मिल रही, तो इसका कारण यह है कि वैभव शान्तिका कारण नहीं है। शान्तिका कारण तो सम्यग्ज्ञान, निरपेक्ष स्वरूपकी ओर लगना, आत्महितका भाव यही है शान्तिका कारण। शान्तिके कारणोंसे तो दूर भागें और अशान्तिके आश्रयमें लगें तो वहाँ आनन्द कहाँ प्राप्त हो सकता है?

भोगोंकी असारताका निर्णय—भोग असार हैं, समागम असार हैं, इस बातका समर्थन गई-गुजरी बातोंका स्मरण करके कर लीजिए। वर्तमानमें जो स्थिति है उसमें तो निर्णय करना कठिन लग रहा है, और भावीकालके लिए निदान बाँधकर जो वासना फंसाई है उसमें निर्णय करना कठिन लग रहा है। तो गई-गुजरी बातोंका स्मरण करके तो निर्णय करना
Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
सुगम हो सकता है। अब तक इन्द्रियके विषय नाना प्रकारसे भोगे, अब उनका क्या आनन्द रहा ? उनसे अब क्या हित हो रहा है ? कौनसी बात आज आत्मासे ऐसी हुई जिससे यह कह सकें कि देखो हमने समृद्धिका इतना काम तो कर लिया। अब वहाँसे दृष्टि हटायें और हितपथ की ओर अपनी दृष्टि लगायें। खुदके लिए खुद ही शरण है, खुद ही जिम्मेदार है। दूसरा कोई उत्तरदायी नहीं है, वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है। किसीको गालियां नहीं दी जा रही हैं, वस्तुका स्वरूप कहा जा रहा है। प्रत्येक जीव अपनी-अपनी ही धुनका काम कर रहा है। कोई किसी के काम नहीं आ रहा है। ऐसे इस नग्न संसारमें परचारित्रकी प्रवृत्ति बनाये रहना, यह हमारे कल्याणकी बात नहीं है।

आसवदि जेण पुण्णं पावं वा अप्पणोध भावेण।
सो तेण परचरित्तो हवदित्ति जिणा परूविंति ॥१५७॥

परचरित्रता—जो शुभ भावोंसे उपरक्त भाव है वह पुण्यास्त्रव है और जो अशुभोपयोगसे उपरक्त भाव है वह पापास्त्रव है। इसका प्रतिपादन इस गाथामें किया है, जिस परिणाम से आत्माका पुण्य अथवा पाप आस्त्रवित होता है वह आत्मामें अशुद्ध भावोंसे परचारित्री होता हुआ अपने आपको मोक्षमार्गसे दूर रखता है और संसारमें अपनेको रुलाता है, ऐसा जिनेन्द्र भगवानने बताया है। आत्महितका पंथ कितना मुक्ति अनुभवपर आधारित है, वैज्ञानिक है, देखते जावो और करते जावो। देखते जा रहे हैं, हम जब जिस प्रकारका परिणाम करते हैं उस समय उस प्रकारका हममें श्रम क्लेश विह्वलता आदिक उत्पन्न होती हैं। और जब शुद्ध परिणामोंकी ओर चलते हैं तो सहज ही निराकुलता प्रकट होने लगती है। जैसा करते हैं तैसा हम भोगते हैं, यह बात अनुभव भी बता देता है और यही बात वस्तुस्वरूपकी बात यथावत् जिनेन्द्रदेवने भी बतायी है।

आस्रवका परिणाम—पुण्य और पापका आस्रव करने वाला भाव इस निरास्रव परमात्मस्वरूपसे अत्यन्त उल्टा है। कहाँ तो उसका सहजस्वरूप आस्रवसे दूर रहनेका है, निरास्रव है, परमात्मस्वरूप है और कहाँ उससे विपरीत है यह परिणाम, जो पुण्य और पापका आस्रवण करता है ? बहुत दूरकी भी बात जाने दो, तत्कालकी बात देख लो, यहाँ बुरा परिणाम किया और वहाँ ही मनसे, वचनसे अथवा कायसे प्रवृत्ति हुई कि वहीं लोग लथाड़ देते हैं और दंड देते हैं। कोई बलवान हुआ और तत्काल न भी दंड लोगोंसे पा सके, पर खोटी वृत्तिके फलमें किसी समय दंड अवश्य पायगा और फिर कर्मोंके बन्धनसे आत्मपरिणामोंका तो परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव है। कैसा ही बली, कैसा ही यशस्वी, कैसा ही अधिकारी हो और भले ही वह अपने जीवन तक भी अपने पापकृत्योंको निभा ले जाय, किन्तु बचकर जायगा कहाँ, कर्मबन्धनसे छूटकर रहेगा कहाँ ? क्लेश संक्लेश तो उसे तत्काल मिल ही रहे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं, जो फल पाया वह तो वाजिब था ही, पर भविष्यमें वह खोटा ही फल पायगा।

सारभूत और असारभूत काम—भैया! शुद्ध आत्माका अनुभव ही एक सारभूत काम है, इस वाक्यको अपने सामने लिखकर रख लो, जब चाहे इसको याद कर लो, जब चाहे इस को कसौटी पर कस लो। मैं शुद्ध ज्ञानमात्र हूं—इस प्रकारका अनुभव बने वह परिणाम तो है आनन्ददायक, शिवसाधक, कल्याणस्वरूप। और एक इस आत्मानुभवके अतिरिक्त किसी भी परतत्त्वमें लगें—बड़े अच्छे लड़के हैं, बड़ा अच्छा परिवार हैं, लोग बड़े प्रेमसे बोलते हैं, बड़े सुखमें जीवन कटता है, बड़ा विनय करने वाले स्त्री पुत्र हैं, हमारी आज्ञा सभी मानते हैं, सब कुछ है, किन्तु ये सब तुम्हारे विकल्पोंके कारण ही तो बन रहे हैं। तुम्हारे लिए तो क्षोभ परिणामके ही आश्रय बन रहे हैं। अच्छा हो कोई तो, बुरा हो कोई तो, किसी भी परपदार्थमें लगाई हुई दृष्टिसे जो चारित्र बनता है वह जीवके अहितरूप ही है।

व्यर्थ समययापन—अहो, जितनी प्रीति परिजन और वैभवमें होती है उतनी प्रीति देव, शास्त्र, गुरुके प्रति होती तो यह प्रीति लाभ देने वाली होती। मोहका परिणाम किया वर्षों तक, जिन्दगीभर स्त्री-पुत्र ही सब कुछ सुहाये, उनकी व्यवस्थाओंमें ही अपने उपयोगको लगा दिया। समय तो गुजर रहा है, आयु तो प्रतिसमय घट रही है, मृत्युके तो सन्मुख ही जा रहे हैं, एक तो यह जीवन छिद-भिद रहा है और फिर दूसरे परोपयोग करके बेचैनी बन रही है, जिस बेचैनी का स्वागत भी करते जाते हैं उस बेचैनीका फल भी भोग रहे हैं और आगे भी भोगेंगे। अब शत-प्रतिशत अपने मनमें यह निर्णय बना लो कि मेरा मेरे स्वरूपके अतिरिक्त अन्य समस्त पदार्थ मेरे कुछ नहीं हैं। किसी भी परपदार्थके समागमसे अपनेको सौभाग्यशाली समझना, यह बड़ी भूल होगी।

भाग्यकी अहितरूपता—भैया! भाग्यको तो फोड़ना पड़ेगा। लोग किसी निर्धन असहायको देखकर कहते हैं कि इसका भाग्य फूट गया। अरे कहाँ भाग्य फूट गया? भाग्य फूट जाता तो कल्याण हो जाता। यह भाग्य शुभ अथवा अशुभ दो भागोंमें बँटा है। यह भाग्य ही तो इस जीवको परेशान कर रहा है, चारों गतियोंमें भटका रहा है। हमें भाग्यकी रंच जरूरत नहीं है। हमें न चाहिए भाग्य। मैं तो यह केवल ही अनन्त समृद्धियोंसे परिपूर्ण हूं, मुझे अन्य कुछ भी लेप न चाहिए। मैं जैसा सहज शुद्ध निजस्वरूपमात्र हूं मैं तो उतना ही भर रहना चाहता हूं अर्थात् अपने उपयोगसे इतना ही मानता रहूं कि मैं इसमें ही रति करता रहूं, बस यह चाहिए, अन्य कुछ न चाहिए।

अभीष्टता—लोग केवलज्ञानसे सर्वज्ञपनेका चमत्कार सुनकर उस सर्वज्ञताकी चाहमें बढ़ने लगते हैं। मुझे न चाहिए सर्वज्ञता। मुझे तो केवल अपने स्वरूपका स्पष्ट ज्ञान चाहिए और उस स्वरूपमें लगना चाहिए। मुझे न चाहिए वह केवल दर्शन, सर्वदर्शिता, मैं तो केवल

Version 1

अपने सहजस्वरूपको ही लखता रहूं यही दर्शन चाहिए। मुझे न चाहिए अद्भुत अनन्त आनन्द। किन्तु स्वरूपसे विरुद्ध जो बात है, आकुलताका परिणाम है, क्षोभका कलंक है वह क्षोभ न चाहिए। क्षोभसे रहित केवल ज्ञाताद्रष्टा रहनेकी स्थितिमें रहूं, इतना भर चाहिए। मुझे न चाहिए अनन्तशक्ति। मैं तो इतनी शक्ति चाहता हूं कि मैं अपने स्वरूपमें स्थित रह जाऊँ। भले ही हमारे इस निजकी संभालमें जो कुछ विकास बने, पर मुझे उसकी तृष्णा करना नहीं है, केवलस्वरूपकी ओर लगना है। ऐसा ज्ञानका जो स्वचारित्रभाव रहता है उस भावसे अज्ञान दूर रहता है। अज्ञानभाव परपदार्थोंमें ही अपनी दृष्टि बनाता है, विकल्प परिणति करता है, वह तो बंधका मार्ग है, मोक्षका मार्ग नहीं है।

जो सव्वसंगमुक्को णण्णमणो अप्पणं सहावेण।
जाणदि पस्सदि णियदं सो सगचरियं चरदि जीवो ॥१५८॥

स्वकचरित्रका अधिकारी—जो जीव अपने शुद्ध स्वभावसे आत्माको निश्चय करके जानता है और देखता है वह जीव अन्तरंग और बहिरंग परिग्रहोंसे रहित होता हुआ एकाग्रचित्त होकर स्वसमय आचरणका पालन करता है। जीवको वास्तविक शान्ति मिले, इसके उपायमें केवल एक यह निज कला ही समर्थ है कि वह बाह्य पदार्थोंसे, परभावोंसे अपनी दृष्टि मोड़कर केवल अपने आपके सहजस्वरूपको ही देखे। और ऐसी प्रतीति बनाए रहे कि यह मैं आत्मा समस्त पर और परभावोंसे रहित केवल शुद्ध चैतन्य शक्तिमात्र हूं, ऐसा अपना अंतः निर्णय रहे। इस अन्तः पुरुषार्थसे शान्ति प्राप्त हो सकती है।

स्वसमयता—स्वसमय क्या चीज है? इसके सम्बन्धमें सुनिये—निज शुद्ध आत्माका स्वसम्वेदन और ऐसा ही परिणमन होना स्वसमय है। शुद्ध आत्मासे मतलब यहाँ केवलज्ञान, केवल दर्शनमय आत्मासे नहीं है, किन्तु समस्त परसे रहित केवल यही जैसा कुछ हो उस ही का नाम शुद्ध आत्मा है। शुद्ध शब्दका अर्थ परसे रहित अपने स्वरूपमात्र होना है। शुद्ध विकास स्वाभाविक विकाससे मतलब यहाँ शुद्धका नहीं है। अरहंत प्रभु सिद्ध प्रभुकी जो वर्तमान शुद्ध स्थिति है उसकी बात नहीं कही जा रही है, किन्तु अपने आपमें यह स्वयं परसे रहित और अपने स्वरूपमें स्वयं कैसा है उस सत्त्वको शुद्ध शब्दसे पुकारा गया है। जो आत्मा अपनेको शुद्ध अनुभव करता है अर्थात् एकाकी अपने ही सत्त्वके कारण अपने आपमें जो सहज है उस रूप जो अपनेको मानता है उसका बेड़ा पार है। और जो अपने इस परमार्थ सहजस्वरूपसे चिगकर बाहरमें किसी परिजनसे, घरसे, वैभवसे, देहसे, यशसे जो अपनायत करता है बस वही संसारमें गिरता है।

संसारभ्रमण व संसरणमुक्तिके उपाय—संसारमें रुलने और संसारसे छूटनेके बस ये ही दो उपाय हैं। जो जीव अपने आपके इस शुद्ध आत्मस्वरूपका सम्वेदन करता है, वीतराग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परमसामायिक रूप स्वचारित्रका अनुभव करता है, वह सर्व संगसे मुक्त होकर प्रकट स्वसमय बन जायगा और संसारसे छूट जायगा तथा जो परमें अपनायत करेगा वह संसारमें रुलेगा। परमार्थतः देखो तो हम आप सभी जीव बाह्यपरिग्रहोंसे रहित ही हैं। न आज तक हम आपमें बाह्यपरिग्रह आये हैं और न कभी आ सकेंगे। केवल इन बाह्यपदार्थोंके सम्बंधमें अन्तरङ्गमें जो कल्पनाएँ बनायी हैं, बना रहे हैं वे बस रही हैं हम आपमें। बाह्य परिग्रह तो अब अन्तर में भी नहीं हैं, और जब यह जीव निज शुद्ध आत्माका अनुभवन करता है वहाँ तो अन्तरङ्ग परिग्रह भी नहीं हैं। तो एक इस कलामें अपने आपके सहजस्वरूपका दर्शन करें, एक इस कलामें परिग्रहरहितपना तो स्वयमेव ही पड़ा हुआ है। केवल एक माननेकी आवश्यकता है। बात जहाँ जैसी है वह तो है ही। यह स्वयं सबसे न्यारा केवल अपने स्वरूपमात्र है ऐसा मान लें बस इसमें कल्याण है।

ज्ञानीका भाव—तीन लोक तीन कालमें भी मन, वचन, कायसे कृतकारित अनुमोदना से समस्त बाह्य और आभ्यंतर परिग्रहोंसे शून्य हो जाना है यह ज्ञानी जीव। न उसके व्यतीत हुए अनन्त कालमें कोई परिग्रह था, न उसके भविष्यमें भी कोई परिग्रह होगा और न वर्तमान में भी उसके साथ कोई पदार्थ लिपटा है। ज्ञानी पुरुष तो जानता है कि यह मैं आत्मा अपने स्वरूप सत्त्वमात्र अब भी हूं, पहिले था, आगे भी होऊँगा। ऐसा शुद्ध निर्लेप अपने आपकी कोई सुध करे तो उसे क्या कष्ट है? कष्ट हम आपने बनाया, कल्पनाएँ कर-करके हमने ही अपने कष्टमें बढ़ाया। उन कल्पनाओंपर नियंत्रण करनेकी आवश्यकता है।

स्वरूपनिबन्धन—स्वरूपकी दृष्टिसे दो बातें तकी जाती हैं, एक तो यह परसे रहित है और दूसरे अपने ही स्वरससे परिपूर्ण है। अपने स्वरूपसे किस प्रकार परिपूर्ण है यह? यह आत्मा समस्त आत्मप्रदेशोंमें सहज परमआनन्दरससे भरपूर है। यह आनन्दरस अपने आपमें ही झरता हुआ प्रकट होता है। जब यह जीव परिग्रहरहित परमआत्मतत्त्वकी भावना करता है तो उस भावनाके द्वारा अपने आपके प्रदेशोंमें ही निरंतर आनन्द ही आनन्द झरता है, उस आनन्दरससे परिपूर्ण यह आत्मा स्वयं है। तात्पर्य यह है कि यह आत्मा आनन्दका भंडार है। जैसे यह आत्मा परिपूर्ण ज्ञानका भंडार है, ऐसे ही यह आत्मा अनन्त आनन्दका भंडार है, पर कोई धैर्य रखे, साहस करे, इस ओर झुके, ऐसी ही दृढ़तासे मान ले तो उसका कल्याण है। और जो ऐसा आनन्दभंडार होकर भी अपने आपको यों नहीं मान सकता है वह जरा-जरासी बातोंमें कल्पनाएँ बना-बनाकर बढ़ा-बढ़ाकर दुःखी होता रहता है।

एकाग्रचित्तता—यह साधु पुरुष, यह योगी पुरुष जो आत्मयोगकी साधना कर रहा है वह एकाग्र मन होकर सहजस्वरूपका ध्यान करता है। वहाँ उस योगीके अंदर कोई विकल्प-जाल नहीं है। जैसे संसारी पुरुष, मोही पुरुष कभी-कभी एक चित होकर किसीकी ममतामें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
मग्न होते हैं. ऐसे ही ये योगी पुरुष निर्विकल्प, अखण्ड शुद्ध चैतन्यस्वभावकी रुचिसे और इस ही के आलम्बनसे जो उन्हें आनन्द प्राप्त होता है उस आनन्दरससे तृप्त होकर एक उस सहज स्वभावकी ओर ही झुके रहते हैं, उस ही में उनका एकाग्र मन रहता है। जैसे किसी पुरुषके इष्टका वियोग हो जाय तो चलते, उठते, सोते आधी नींदमें कभी जागतेमें ही उसके इष्टका ख्याल बना रहता है, उसकी ही मूर्ति सामने बनी रहती है, ऐसे ही जिसको इस आत्मस्वभाव की रुचि जगी है और आत्मस्वभावका इस समयमें उपयोग हो रहा है, उस ही उपयोगमें रुचि है उस ही का तो वह ज्ञानी योगी पुरुष ध्यान किया करते हैं। यों निर्विकल्प परमात्मतत्त्व की भावनामें एकाग्रचित्त हुए पुरुष स्वसमय बनते हैं अर्थात् आनन्दमग्न रहते हैं।

धर्माचरण—भैया ! जब कोई कहे कि धर्म करो तो उसका सीधा अर्थ यह लगा लेना कि वास्तविक आनन्दमें लीन रहो। धर्म करना और वास्तविक आनन्दमें लीन रहना इन दोनोंका एक ही अर्थ है। धर्म कष्टसे नहीं होता, क्लेश कर-करके धर्म नहीं होता। जो साधु जन बड़े-बड़े तपश्चरण करते हैं, सर्दी गर्मीके दुःख सहते हैं, क्षुधा तृषाके क्लेश सहते हैं उन्हें देखकर अज्ञानी जीवोंको ऐसा लगता है कि ये योगी पुरुष बड़े क्लेश सहते हैं, लेकिन वे योगी पुरुष अन्तरंगमें क्या कर रहे हैं ? वे आनन्दरससे तृप्त हो रहे हैं। बड़ी कड़ी धूपमें पर्वतोंपर तपस्या कर रहे हैं, सारा शरीर पसीनेसे लथपथ है। योगियोंकी इस प्रकारकी दशा को देखकर अज्ञानी जन आश्चर्य करते हैं, अहो कैसा ये क्लेश सह रहे हैं, पर वे योगी क्लेश नहीं सह रहे हैं, किन्तु अपने आत्मस्वरूपकी भावनाके प्रसादसे अन्तरङ्गमें प्रसन्न हैं। उनकी प्रसन्नताको दूसरे क्या जानें ? वे इतने आनन्दमग्न हैं कि यों दिन रात महीने भी बीत जाते और उन्हें ऐसे ही कुछ महसूस भी नहीं होता कि कितना समय व्यतीत हो गया ? वे योगी पुरुष ऐसे आनन्दमग्न रहते हैं कि स्यालिनी पैरका भक्षण भी कर रही है, मांस भी अलग हो गया है, लेकिन उनके वेदनाका नाम ही नहीं है, आनन्दकी मग्नता है। भला कष्ट होता तो क्या कष्टके बाद मोक्ष जैसी अवस्था हो सकती है ? मोक्षकी अवस्था शुद्ध आनन्दके अनुभवके प्रसादसे ही हो सकती है।

व्यर्थ विकल्पभार—हम आप सभी जीव बिल्कुल व्यर्थ ही दुःखी हो रहे हैं, कष्ट सह रहे हैं और वह भी कष्ट है कल्पनाओंका, मानसिक कष्टोंका। अरे सबसे विभिन्न एक इस निज शुद्ध स्वरूपपर दृष्टि करें तो सारे संकट समाप्त हो जाते हैं। रही यह बात कि मित्रोंका, परिजनोंका क्या होगा ? हम यह पूछते हैं कि मित्र और परिजनोंकी रक्षा क्या आप ही कर रहे हैं ? उनके पुण्यका उदय न हो और उन्हें सुख प्राप्त हो जाय, क्या ऐसा कभी हो सकता है ? अरे जैसे हम आप जीव हैं ऐसे ही वे सब जीव हैं। जैसे कर्म हम आपके साथ हैं वैसे ही कर्म उनके साथ हैं। हम उनका क्या करते हैं ? और दूसरी बात यह मान लो कि कुछ
Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org
हमपर निर्भर है तो आप उनकी जिम्मेदारी कब तक निभा सकते हैं ? आप बतलावो तो सही। अपनी ही जिम्मेदारी जब निभा नहीं सक रहे तो दूसरेकी जिम्मेदारी क्या निभाई जा सकेगी ? और सब कुछ है, सब परिणमन है, जिसका जैसा भाग्य है वह अपने भाग्यसे सब कुछ प्राप्त कर रहा है, उसमें आप भी निमित्त हो रहे हैं, दूसरे भी निमित्त हो सकते हैं।

अवसरके सदुपयोगकी प्रेरणा—भैया ! आत्महितके सम्बंधमें इतना तो विचारिये कि यह मनुष्यजीवन कितनी कठिनतासे प्राप्त हुआ है ? संसारके अन्य जीवोंपर दृष्टि दो तो वे भी जीव हैं, कीड़ा-मकोड़ा पेड़ आदिक, क्या ऐसे हम न थे, नहीं हो सकते थे ? कल्पना करो यदि आज हम आप लोग कोई भी ऐसे कीड़ा-मकोड़ा, पतिंगे होते तो किस स्थितिमें होते ? आज कुछ यह विकास हुआ। क्या उन निकृष्ट परिस्थितियोंमें इतना जानना, समझना, बड़ी बड़ी बातोंका निर्णय करना ये सब बातें हो सकती थीं ? यदि आज शुभ अवसर पाया है, इस अवसरको यदि ममतामें ही खो दें, विकल्पजालोंमें ही गंवा दें तो बतलावो इन सब समागमोंका लाभ क्या पाया ? जो पुरुष इस निज शुद्ध आत्माको जानता है, किस रूपसे ? यह जैसा स्वयं अपने सत्त्वके कारण है निर्विकार, क्या केवल जीवोंमें रागादिक भाव हो सकते हैं ? न इनके साथ उपाधि हो, न कर्मबन्धन हो तो क्या जीवोंमें कोई रागादिक बन सकते हैं ? कभी नहीं बन सकते, यद्यपि बन रहे हैं ये रागादिक, पर बनते हुए की हालतमें भी हम अपने उस सहजस्वरूपको संभालें जो केवल है, अपने सत्त्वमें अकेला है उसके स्वरूपको तो देखो।

स्वभावावलोकनका उपक्रम—इस समय भी आत्माका सहजस्वरूप देखा जा सकता है सम्भावनाके बल पर। यदि ये कर्म न होते, शरीर न होता तो मैं किस प्रकारकी स्थितिमें होता, ऐसी तर्कणा बनानेके बाद अपने आपके एकत्वका विशद अवगम हो सकता है कि मेरा स्वरूप क्या है ? जो जीव उपरागरहित कलुषतारहित उपयोगमयी होनेसे सर्व संक्लेशोंसे मुक्त हो गए हैं, निःशंक रहनेमें कैसी निरुपरागता रहती है, कैसी आनन्दकी स्थिति रहती है, यह बात तो हम आप सभी इस क्षण भी समझ सकते हैं। जरा यह मानकर अपनी ओर तो आयें कि यह मैं तो अपने स्वरूपमें उतना ही मात्र हूं जो एक चित्प्रकाश है। उस केवलपर दृष्टि रखें तो स्वयं ही अपने आपमें से उस आनन्दकी अनुभूति हो लेगी, जिसके बाद हम यह स्पष्ट समझ सकेंगे कि ओह ! मैं तो ऐसा ज्ञानानन्दस्वरूप हूं।

स्वचारित्रारम्भ—जब यह जीव सर्व संगसे मुक्त होकर आत्मभावनामें सम्मुख होकर एक चित्त होकर मैं शुद्ध ज्ञानदर्शनमात्र हूं इस रूपसे परखता है तब विशुद्ध आनन्दका अनुभव करता है यह। आत्मरूप परखनेकी कसौटी यह निरपेक्ष उपयोग है। हम केवल अपने हितकी ही दृष्टि बनायें और बाह्य पक्ष छोड़ें तो ऐसे आशयको आप कसौटी ही समझिये।'
Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
जब तक हमारा आत्महितके लिए ही विशुद्ध आशय नहीं बनता तब तक हमारी वास्तविक परख नहीं बन सकती । यों विशुद्ध आशय बनाकर जो ज्ञान दर्शनस्वरूप अपनेको जानता है वह जीव अपने आत्माका आचरण करने वाला है । शुद्ध ज्ञानमय आत्मतत्त्वमें इतना ही मात्र अपना अनुभवन करना, यही है स्वचारित्र, यही है स्वसमय, यही है मोक्षका मार्ग । नौपदार्थाधिकारके बाद मोक्षमार्गका विस्तार बताने वाला यह चूलिकाका प्रकरण है । इसमें निश्चयसे मोक्षमार्ग क्या, व्यवहारसे मोक्षमार्ग क्या, इन सब बातोंका स्पष्ट वर्णन किया गया है । निश्चयमोक्षमार्गके प्रकरणमें यह कहा गया है कि अपनी ओर झुकना, लीन होना, समाना, यही वास्तवमें मोक्षका मार्ग है ।

चरियं चरदि सगं सो जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा ।
दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो ॥१५६॥

स्वकाचरण—वह पुरुष अपने आपके स्वरूपका अनुचरण करता है जो निर्विकल्प आत्मस्वरूपका उपयोग करता है । कैसा है यह आत्मा ? रागद्वेष मोहसे रहित सदा आनन्दस्वरूप, जहाँ जीवन-मरणका भी पक्ष नहीं है, लाभ अलाभमें भी राग पक्ष नहीं है, सुख दुःख का भी पक्ष नहीं है, निन्दा प्रशंसाका भी पक्ष नहीं है, सर्व स्थितियोंमें इसके समता जगी है, ऐसा यह प्राणी अपने आपके स्वरूपका अनुचरण करता है ।

जीवनमरणमें समता—जैसे किसी पुरुषको महत्त्वपूर्ण कार्य सामने लगा हो तो वह छोटी-छोटी बातोंमें रागद्वेषमें नहीं फंसता, उसका तो कोई महत्त्वपूर्ण कदम सामने पड़ा हुआ है । ऐसे ही जिस ज्ञानी योगी पुरुषका लक्ष्य महत्त्वपूर्ण है, मोक्षका लक्ष्य है, शुद्ध स्वभावको प्रतीतिमें लेनेका जिसका निरन्तर प्रवर्तन चल रहा है, ऐसे पुरुषका जीवन और मरण भी कोई अन्तर वाली बात नहीं रहती । जीवित रहे तो क्या, मरण हो तो क्या ? आत्मस्वभाव की दृष्टिसे रहित रहकर जीवन रहा तो उससे लाभ क्या, और आत्मस्वभावकी दृष्टि सहित होकर मरण हो गया तो उससे नुक्सान क्या ? अथवा यह जीवन किसलिए है, क्या करना है, इस ज्ञानी पुरुषका जीवन और मरण दोनों एक समान जंच रहे हैं । दोनोंमें उसके समताभाव है । उसका झुकाव तो एक निज अंतस्तत्त्वकी ओर है ।

लाभ अलाभमें समता—ज्ञानीके यहाँ लाभ अलाभ क्या ? ये बाहरी पदार्थ अत्यन्त प्रकट भिन्न हैं, वे निकट आ गये तो क्या, दूर चले गये तो क्या, और मेरा इस आत्मस्वरूपका पहिचाननहारा भी इस लोकमें कोई नहीं है । जो लोकव्यवहारी जीव मुझसे बात करते हैं वे मेरे आत्मस्वरूपको लक्ष्यमें रखकर नहीं करते, किन्तु पौद्गलिक मूर्तरूपसे जो कुछ सामने है, जो दूसरोंकी इन्द्रियोंके द्वारा ज्ञात होता है उस मुद्राको लक्ष्यमें रखकर बात करते हैं । लाभ अलाभ भी इस ज्ञानी योगी पुरुषके लिए एक समान बात है । वह प्रसन्न होता है तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्मानुभवसे प्रसन्न होता है, खेद तब होता है जब आत्मानुभव नहीं हो पाता है। इसके सिवाय अन्य परिणमन कैसे ही होते हों, उनका तो मात्र यह ज्ञाताद्रष्टा रहता है। यह है ज्ञानी जीवकी अंतरंग परिस्थिति।

सुख दुःखमें समता—यह ज्ञानी पुरुष सुख और दुःख दोनोंमें समान रहता है। दुःख हो तो क्या? यही तो बात है कि कुछ इन्द्रियोंको न सुहाये ऐसी परिस्थिति हो गयी सुख हो तो क्या? यही तो बात है कि इन्द्रियोंको सुहा जाय ऐसी परिस्थिति हो गयी। न ये इन्द्रियाँ रहेंगी, न ये सुख दुःख रहेंगे, न ये बाह्य साधन रहेंगे और न ऐसी मनकी कल्पनाएँ रहेंगी। यह सब मायाजाल है। सुख दुःखमें ज्ञानी जीवकी समान बुद्धि रहती है।

निन्दा प्रशंसामें समता—निन्दा और प्रशंसामें भी ज्ञानीके समता रहती है। निन्दा के वचन अथवा प्रशंसाके वचन क्या हैं? वे तो भाषावर्गणाके परिणमन हैं, अचेतन है और उन वचनोंका प्रयोग जो आत्माके निमित्तसे होता है। उस आत्माने तो केवल अपने आपकी खुद में अपनी कल्पना बनाई थी, उसने मुझमें कुछ उत्पन्न नहीं किया। यह ज्ञानी योगी पुरुष वस्तुस्वरूपको अभेद्य निरखकर इस मुझ आत्मतत्त्वमें परका प्रवेश हो जाय ऐसा नहीं हैं, यह परसे अप्रविष्ट है ऐसे आत्मतत्त्वको निरखकर यह ज्ञानी निन्दामें और प्रशंसामें दोनोंमें समान रहता है। यों जो समताके अनुकूल अपने आत्मस्वरूपका आचरण करता है वह परद्रव्योंमें आत्मीयताका भाव कैसे कर सकेगा? ये परद्रव्य मम के कारणभूत हैं, उन्हें अज्ञानी ही अपना सकेगा, ज्ञानी नहीं अपना सकता।

ज्ञानप्रकाश—भला एक बार शुद्ध ज्ञानका प्रकाश हो जाने पर फिर क्या वह असत्य बात आ सकती है? जैसे किसीने स्वप्नमें बड़ी निधि पायी हो और वह जग जाय तो जग जानेपर उसे सब सही पता हो गया कि वह सब केवल स्वप्न था, लेकिन जग जानेके बाद भी यह जीव स्वप्नमें जैसा मौज लूट रहा था उस वैभवको पाकर मौज लूटनेके लिए जबरदस्ती आँखें मीचकर पड़ जाय तो क्या वे बातें आ सकती हैं? नहीं आ सकती हैं? इसी प्रकार मोहकी निद्रामें जो कुछ निरखा गया था। और उससे सुख दुःख भोगा गया था, एक बार सत्य तत्त्वका प्रकाश हो जानेपर फिर क्या वे व्यामोहके समयकी व्यवहारकी बातें जबर्दस्ती करने पर भी आ सकती हैं? नहीं आ सकती है। तो ज्ञानी जीवको परद्रव्योंमें अपनानेका विकल्प नहीं रहता है। यों यह वीतराग स्वसम्वेदन ज्ञानी समस्त मोहवासनाओंसे रहित है, पर भावोंका त्यागी है, आत्मभावोंके सम्मुख हुआ है। यह आत्मस्वभावरूप दर्शन ज्ञानको अभेद रूपसे निरखता है। वह तो मैं ज्ञान, दर्शन मात्र हूँ, ऐसे अनुभवपदसे शुद्ध समयके, स्वसमयके पथपर चल रहा है।

अविकल्पताका प्रभाव—ज्ञानी पुरुष ज्ञान होनेके बाद प्रथम तो सविकल्प अवस्थामें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
मैं ज्ञाता हूं, मैं द्रष्टा हूं यों विकल्प करता है, पर वही ज्ञानी पुरुष इस ज्ञातृत्वकी, इस दृष्टृत्व की स्थितिमें अपनेको अभेदोपयोगी बनाकर जब निर्विकल्प समाधि प्राप्त करता है उस समय इन समस्त शुद्ध ज्ञान दर्शनोंसे भिन्न केवल आत्माका ही सम्वेदन करता है। यह बात तो अध्यात्मयोगकी है और लोकपद्धतिमें भी देखो—जिस समय आप बढ़िया लड्डू, हलुवा कुछ भी खा रहे हों, जब तक आप उसके सम्बंधमें यों सोचते रहेंगे कि इसमें घी ठीक पड़ा, इसमें बूरा अच्छा पड़ा, यह सिका भी अधिक है उस समय आप एकाग्र मन होकर स्वाद नहीं भोग सकते हैं, आप उस समय विकल्पोंमें पड़ जाते हैं। जब यह अनन्य स्वभावका ध्यान करता है तो इस आत्माको ज्ञाताद्रष्टा रहनेका भी विकल्प नहीं रहता। यों शुद्ध द्रव्यके आश्रित अभिन्न अर्थात् जहाँ वही साध्य है, वही साधन है, ऐसा निश्चयनयका आश्रय करके मोक्षमार्गको तके तो वह अपने आपकी रुचि, अपने स्वभावका ज्ञान और अपने स्वभावमें मग्न होना– इस रत्न-त्रयरूप ही मोक्षमार्गको पाकर सिद्ध होता है।

धम्मादीसद्दहणं सम्मत्तं णाणमंगपुव्वगदं।
चिट्ठा तवंहि चरिया ववहारो मोक्खमग्गोत्ति ॥१६०॥

व्यवहारमोक्षमार्गका वर्णन—इस गाथामें व्यवहारमोक्षमार्गका प्ररूपण है। धर्मादिक द्रव्योंका यथार्थ श्रद्धान करना सो व्यवहार सम्यक्त्व है। ११ अंग १४ पूर्वमें प्राप्त हुए ज्ञान को व्यवहार सम्यग्ज्ञान कहते हैं और १२ प्रकारके तपोंमें १३ प्रकारके चारित्रोंमें जो चलन है, प्रवृत्ति है उसे व्यवहारचारित्र कहते हैं। इस प्रकार व्यवहार सम्यग्दर्शन, व्यवहार सम्यग्ज्ञान और व्यवहार सम्यक्चारित्ररूप व्यवहार मोक्षमार्ग कहा है। व्यवहार मोक्षमार्गमें व्यवहारका यह अर्थ है कि यह निश्चय मोक्षमार्गको कारण होता है। व्यवहारनयका आश्रय करके जिसमें भिन्न साध्य हो, भिन्न साधन हो और जो स्व और परका कारणपूर्वक हो वह सब वर्णन व्यवहारका वर्णन कहलाता है। यह व्यवहार भी निषिद्ध नहीं है, क्योंकि निश्चय और व्यवहारका परस्परमें साध्यसाधन भाव है।

साध्यसाधनभावका दृष्टान्त—जैसे स्वर्ण और जिस मिट्टीसे स्वर्ण निकलता है वह स्वर्णपाषाण। स्वर्ण यद्यपि स्वर्ण नहीं है, स्वर्ण पाषाणमें यदि विधिपूर्वक प्रयोग किया जाय तो मन-दो मन पाषाणमें से कोई एक-दो तोला स्वर्ण निकलता है, लेकिन स्वर्णपाषाण कारण तो हुआ स्वर्ण निकलनेका। जैसे इन दोनोंमें परस्पर साध्यसाधन भाव है इसी प्रकार व्यवहारमोक्षमार्गमें और निश्चयमोक्षमार्गमें साध्यसाधन भाव है जो निश्चयमोक्षमार्गका कारण है वह व्यवहारमोक्षमार्ग है अर्थात् जो स्वयं यथार्थ तो मोक्षमार्ग नहीं है, किन्तु यथार्थ मोक्ष-मार्गके पहिले होने वाला जो परिणाम है वह व्यवहारमोक्षमार्ग है। परमेश्वरकी आज्ञा अथवा उनका तीर्थप्रवर्तन दोनों नयोंके आधीन होता है, निश्चय और व्यवहारनय। केवलनिश्चयनय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का ही एकान्त किया जाय तो तीर्थप्रवृत्ति नष्ट हो जायगी। तीर्थका प्रवर्तन व्यवहारके आधीन है और यदि केवल एकान्तका व्यवहार किया जायगा तो तत्त्वकी बात समाप्त हो जायगी। अतएव प्रभुका उपदेश निश्चयनय और व्यवहारनय दोनों नयोंके आधीन हुआ करता है। इससे पहिले भी व्यवहारमोक्षमार्गका वर्णन किया है। अतएव यहाँपर इस ढंगसे व्यवहार-मोक्षमार्गका वर्णन करते हैं कि निश्चयमोक्षमार्गकी साधकता सिद्ध हो।

प्रयोजनभूत श्रद्धानकी श्रावक व साधुमें समानता—वीतराग सर्वज्ञ द्वारा प्रणीत जीवादिक पदार्थोंके विषयका यथार्थ श्रद्धान होना और ज्ञान होना—ये दोनों गृहस्थके और तपस्वीके समान हैं। श्रद्धानका जहाँ तक प्रश्न है गृहस्थ साधुसे पीछे नहीं रहता और मोक्षोपयोगी मोक्षमार्गमें लगनेके लिए जो एक ज्ञान चाहिए, भेदविज्ञान स्वरूप परिज्ञान, वह भी तपस्वीसे कम नहीं होता। केवल एक चारित्रमें अन्तर होता है। तपस्वी जनोंके तो आचार आदिक ग्रन्थोंमें जैसा मार्ग बताया है उस मार्गसे १३ प्रकारका चारित्र होता है। ६ आवश्यक होते हैं, किन्तु गृहस्थ जनोंके उपासकाचारोंमें जैसे कहा गया है पंचम गुणस्थानके योग्य दान, शील, पूजा, उपवास आदिकरूप अथवा एकादश प्रतिमावोंके पालनरूप चारित्र होता है, किन्तु श्रद्धानमें जो तपस्वीका श्रद्धान है वही गृहस्थका श्रद्धान है।

प्रयोजनभूत श्रद्धान—मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत जीवादिक ७ तत्वोंका किस प्रकारका श्रद्धान होता है सम्यग्ज्ञानीके, वह संक्षेपमें इस प्रकार समझिये। जीवके सम्बंधमें यह अवगम रहता है कि यह जीव स्वभावसे निश्चयनयसे एक शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, परभावोंसे रहित अपने स्वरूपमें तन्मय चैतन्यमात्र यह जीव है, किन्तु अनादिकालसे अज्ञानवश रागद्वेष मोहकी प्रेरणासे इसकी संसाररूप अवस्था बन रही है और यह संसाररूप अवस्था किसी परउपाधिके निमित्तसे हो रही है। स्वयं ही कोई पदार्थ स्वयंके विकारका कारण नहीं होता है और ऐसा विकार होनेमें जो कारण है वह है अजीव पदार्थ, कर्मपदार्थ। ये कर्म जीवके रागादिक भावोंका निमित्त पाकर आते हैं, बँधते हैं, और जब इनका उदयकाल होता है तब जीवमें रागादिक पुनः आते हैं और इस प्रकार भावास्रव, द्रव्यास्रव, भावबंध, द्रव्यबंधकी परम्परा चलती रहती है। और इस परम्परामें ये आस्रव और बंध तत्त्व आ जाते हैं। जब यह जीव अपने स्वरूपकी सम्हाल करता है तो परद्रव्योंसे मोह रागद्वेष इसके दूर होते हैं तब सम्वर और निर्जरा होती है। नवीन कर्म नहीं आते, पुराने कर्म झरते हैं ये दो तत्त्व प्रकट होने लगते हैं, और इन दो तत्त्वोंके प्रसादसे इस जीवका सदाके लिए कर्मोंसे मोक्ष हो जाता है।

परिणमनस्वातन्त्र्यका अवलोकन—इस नवतत्त्वकी प्रक्रियाके होते हुए भी वस्तुत्वकी दृष्टिसे देखा जाय तो जीव जीवमें ही जीवका कार्य करता है, अजीव अजीवमें ही अजीवका कार्य करता है। जीवने रागादिक किया और यहाँ कर्मोंमें आस्रव बंध हुआ, इतनेपर भी जीव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ने अपने आपमें रागादिक भावोंका आस्रव किया, कर्मका आस्रव बंध नहीं किया, और उन कार्माणवर्गणाओंमें उनके ही प्रसादसे आस्रवत्व और बंधत्व आया, ऐसे ही यह जीव जब सम्बर और निर्जरा कर रहा है तो जीव कर्मका सम्वर नहीं कर रहा, वह तो स्वयं हो जाता है जीवके सम्वरका निमित्त पाकर। जीव तो अपने आपके भावोंमें अपने रागादिक भावोंका सम्वरण कर रहा है और कर्म कर्ममें सम्वर कर रहा है, इसी प्रकार निर्जरा जीवमें रागादिक झरनेका नाम निर्जरा है, वह जीवमें हो रहा है, और कर्ममें कर्मत्वप्रकृति स्थिति अनुभाग हट रहे हैं यह कर्मोंकी निर्जरा है और जब मोक्ष हो जाता है तब भी जीवने कर्मोंको नहीं छोड़ा। कर्मोंने जीवको नहीं छोड़ा। यद्यपि दोनों छूट जाते हैं, कर्म अलग हुए, जीव अलग हुआ, पर जीवने वस्तुत्वकी दृष्टिसे अपने आपमें समस्त विकारोंको छोड़ा, यही है जीवका मोक्ष, और कार्माणवर्गणाओंमें कर्मत्व परिणमन छूट गया, यही है कर्ममोक्ष।

साधु व श्रावककी स्थिति—भैया! निश्चयसे व्यवहारसे प्रमाणसे जीवादिक ७ तत्त्वों के सम्बंधमें जैसा यथार्थ ज्ञान साधु जनोंका होता है वैसा ही ज्ञान गृहस्थोंको होता है। श्रद्धान और ज्ञानकी अपेक्षा गृहस्थ और तपस्वी समान हैं। हाँ, चारित्रमें गृहस्थके संयमासंयम है और साधुजनोंके सकलचारित्र है। जब भव्य जीव इस व्यवहारमोक्षमार्गको धारण करता है तो उस समय इस भव्य जीवकी स्थिति व्यवहारनयका आश्रय करके परिणमनोंकी होती रहती है और परपदार्थोंके प्रत्ययसे जो भी परिणमन हुआ उसका प्ररूपक व्यवहारनय है अर्थात् व्यवहारनय भिन्न-भिन्न चीजोंको बतलाता है।

व्यवहाररत्नत्रयमें भेदरूपता—जैसे ७ तत्त्वोंका श्रद्धान होना सम्यग्दर्शन है। यहाँ ७ तत्त्व बताया, श्रद्धान करना बताया, एक भेदपरिणमन दिखाया, यह व्यवहारनयका विषय है और अंग और पूर्वका ज्ञान होना सम्यग्ज्ञान है, इसमें भी ज्ञाता और ज्ञानका विषय ये भिन्न-भिन्न बताया है। यही इसमें व्यवहार अंश है, और ५ महाव्रत, ५ समिति, ३ गुप्तियों का पालन करना यह व्यवहारचारित्र है। यह भी यहाँ भेदकरण कर दिया है। निश्चय सम्यग्दर्शनमें भेदकरण नहीं होता, विपरीत अभिप्रायरहित आत्माकी जो स्वच्छता होती है उसका नाम सम्यग्दर्शन है निश्चयसे और इस ही स्वच्छ परिणमन रूप ज्ञातृत्वके रहनेका नाम सम्यग्ज्ञान है और ऐसी स्थितिकी स्थिरता होनेका नाम सम्यक्चारित्र है।

व्यवहार सम्यग्दर्शनका काल—व्यवहार सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्दर्शनके साथ-साथ भी होता है। जैसे अन्तरङ्गमें जो एक बार सत्य प्रतीति हो गई, परमार्थ परमब्रह्मका प्रत्यय हो गया है तो वह तो हो ही चुका है। भले ही उसके अनुभवमें कालका द्वैविध्य हो कि कभी अनुभव हो, कभी न भी हो, किन्तु सम्यग्दर्शनका परिणाम तो सतत रहा करता है और ऐसे सतत निश्चय सम्यग्दर्शके धारी जीवके जीवादिक तत्त्वोंका भी यथार्थ श्रद्धान बना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हुआ है और उस प्रकारके वार्तालापमें भी चलते हैं तो व्यवहार सम्यग्दर्शन भी। इसी प्रकार निश्चय सम्यग्ज्ञानके साथ-साथ व्यवहार सम्यग्ज्ञान भी होता है और एक बार यथार्थ परमस्वरूपका बोध हो गया वह तो फिर हो ही गया। अब उसकी योग्यता मिटती नहीं है। पर प्रयोजनवश व्यवहारिक तत्त्वोंका भी वह ज्ञान करता है। भला जिसको यथार्थतया सम्यक्त्व हो गया वह अविरत अवस्थामें या संयमासंयम अवस्थामें जब पंचेन्द्रियके विषयमें भी वह प्रवर्तन कर लेता है वहाँ भी उपयोग चला जाता है तिस पर भी निश्चय सम्यग्दर्शन है तो व्यवहार सम्यग्ज्ञानके कालमें अन्य-अन्य तत्त्वोंका ज्ञान करते हुए वह निश्चय ज्योति बनी हो तो इसमें क्या विरोध है ? ऐसे ही अंतरंगमें स्वरूपाचरण नामका निश्चय सम्यक् चारित्र, जितने अंशोंमें इसके चारित्र सम्बन्धी स्वच्छता जगी हो चल रहा है। फिर भी व्यवहारसे महाव्रत समितिरूप इसका प्रवर्तन होता है। यों निश्चयरत्नत्रयके साथ ही किन्हीं किन्हीं जीवोंके यह व्यवहाररत्नत्रय पाया जाता है, किन्तु जिसके निश्चयरत्नत्रय तो नहीं है, किन्तु व्यवहाररत्नत्रयका पालन है, यद्यपि वह परमार्थतः मोक्षमार्गी नहीं है, तिसपर भी जैसा व्यवहाररत्नत्रय ज्ञानी जीवके होता है वैसा ही होनेके कारण और उस रत्नत्रयमें रहनेके अनन्तर यह निश्चयरत्नत्रयकी प्राप्तिका पात्र हो सकता है, इस कारण वह भी व्यवहार रत्नत्रय है।

रत्नत्रयमें व्यवहाररूपता—मोक्षमार्ग तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको कहा है। अब उनमें भिन्न साध्य साधन भावकी पद्धति लगे तो वह व्यवहारमोक्षमार्ग है और अभेद पद्धतिसे रत्नत्रय रहे तो वह निश्चयमोक्षमार्ग है। ये धर्मादिक पदार्थ जिसके द्रव्यत्व, गुणत्व और पर्यायत्व आदिक विकल्प होते हैं, भाव हैं, ऐसा उनका यथार्थ श्रद्धान स्वभाव यथार्थ भावका श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है और तत्त्वार्थका यथार्थ श्रद्धान होनेपर जो श्रुत अंग पूर्वोंका ज्ञान है वह सम्यग्ज्ञान है, और तपस्यामें जो उन यतियोंकी प्रवृत्ति है वह उनकी चर्या है। इस व्यवहाररत्ननत्रयके पालनमें स्वयंकी योग्यताका भी परिणमन और विकास चलता रहता है और ७ तत्त्व अंगपूर्व महाव्रत आदिक इन परतत्त्वोंका भी अर्थात् इन भेदभावों का भी वहाँ प्रत्यय चल रहा है, इस कारण यह व्यवहारमोक्षमार्ग है। जैसे स्वर्णपाषाणमें लगी हुई अग्नि पाषाणको और सोनेको भिन्न-भिन्न कर देती है इसी प्रकार जीव और पुद्गलकी एकताको भिन्न-भिन्न करने वाला यह व्यवहारमोक्षमार्ग है। इस तरह भी कारणता समझिये और इस कारणतासे यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि जैसे स्वर्णपाषाणमें से पाषाणत्वका ढेर इकट्ठा होनेपर स्वर्णत्वकी प्राप्ति होती है ऐसे ही व्यवहाररत्नत्रयमें से व्यवहारत्वके होनेपर एक शुद्ध अभेद रत्नत्रय प्रकट होता है।

रत्नत्रयविशुद्धि—जो जीव सम्यग्दर्शन आदिकसे अन्तरङ्गमें सावधान है उस जीवके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
सब जगह ऊपर-ऊपरकी भूमिकाओंमें अर्थात् शुद्ध गुणस्थानमें शुद्ध स्वरूपकी वृद्धि होती है और अभिन्न विश्राम उत्पन्न होता है। सम्यक्त्व होनेपर चतुर्थ गुणस्थानमें इस जीवको स्व-विश्राम नहीं मिल पाता है। उससे अधिक पंचम गुणस्थानमें स्वविश्रामका अवकाश रहता है और छठे, ७वें, ८वें, ६वेंमें शुद्ध भूमिकाओंमें स्वरूपका विश्राम स्थिर हो जाता है। उन गुण-स्थानोंमें स्थिरताको बनाये वह भी व्यवहारमोक्षमार्ग है। निश्चयमोक्षमार्ग तो उत्कृष्ट रूपमें परमार्थसे एक स्वरूप है जो वीतराग होनेपर प्रकट होता है। उससे पहिले व्यवहारमोक्षमार्ग और निश्चयमोक्षमार्गमें कुछ ऐसी भी दृष्टि जमती है कि जिस वृत्तिको अभी निश्चयमोक्षमार्ग कहा जा रहा है उससे अधिक अभेद और स्थिरता होनेपर भी पूर्वकालका स्थितिकरणका उद्योग व्यवहारमोक्षमार्ग कहने लगता है।

भिन्नसाध्यसाधनभावमें व्यवहाररूपता—मोक्षपद्धतिका भेदरूप विस्तार बहुत है और गहन है, किन्तु जिसने एकस्वरूपके अवगमकी कला प्राप्त की है उस कलावान सम्यग्ज्ञानी पुरुषको यह सब कुछ भी गहन नहीं है। वह सब स्थितियोंमें यथार्थस्वरूपका परिचय करने वाला रहता है। यों भिन्न साध्य-साधन भावका जब तक प्रवर्तन है तब तक व्यवहारमोक्ष-मार्ग है और यह व्यवहारमोक्षमार्ग साध्य-साधन भावका अभाव करनेके सम्मुख होता है तो स्वयं सिद्ध स्वभावसे यह जीव परिणमता है वह निश्चयमोक्षमार्ग है। यों निश्चयमोक्षमार्गका जो साधनभूत है उस व्यवहारमोक्षमार्गका वर्णन किया।

णिच्चयणयेण भणिदो तिहि तेहिं समाहिदो हु जो अप्पा।
ण कुणदि किंचिवि अण्णं ण मुयदि सो मोक्खमग्गो ॥१६१॥

निश्चय मोक्षमार्ग—निश्चयनयसे निश्चयसम्यग्दर्शन, निश्चयसम्यग्ज्ञान और निश्चय-चारित्रसे युक्त आत्मा जिस स्वरूपको कहा गया है वह आत्मा अन्य परद्रव्योंको कुछ भी नहीं करता, कुछ भी नहीं छोड़ता, वह तो साक्षात् मोक्षमार्गरूप ही है। करना और छोड़ना—ये दो विकल्प ये दो वृत्तियां भेदभावमें होती हैं। इस ज्ञानमार्गमें बढ़नेपर जीवपर क्या बीतती है वह सब अपने अनुभवसे भी आप अंदाज कर सकते हैं। जब हम निश्चयदृष्टिसे आत्माके स्व-रूपको सम्हालते हैं तो उस सम्हालमें यही नजर आता है कि यह तो जो है सो है, न कुछ दूर करना है और न कुछ किसीको छोड़ना है। किसी पदार्थमें किसी पदार्थके स्वरूपका प्रवेश ही नहीं है। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपमात्र है। यह आत्मा भी अपने ही शुद्ध चैतन्यस्वरूप मात्र है।

शुद्ध एकत्वका श्रद्धान—निश्चयदृष्टिसे यह तका गया है कि निश्चल निजस्वरूपमात्र आत्मामें किसका तो ग्रहण है और किसका त्याग है? श्रद्धानमें यह बात पूरी उनके भी रहा करती है जो व्यवहार मोक्षमार्गमें चल रहे हैं, ग्रहण करना और त्यागना ये सब चल रहे
Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं। मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति करना और मन, वचन, कायकी प्रवृत्तियोंमें न जाने देना इस प्रकारका जिनके यत्न है उनका भी श्रद्धान यही है, पर कोई स्थान ऐसे हैं, कर्मविपाक ऐसे हैं कि जानते हुए भी, श्रद्धान करते हुए भी उस ही रूप रहनेका काम नहीं बन रहा है और ऐसी स्थितिमें प्रवृत्ति और निवृत्ति चलती है। इतने पर भी श्रद्धानमें अन्तर नहीं आता और प्रकटरूपमें उपदेश भी ऐसा किया है कि भाई जो शक्ति है, जो योग्यता है उसे न छुपाकर आचरणमें लगो। पर इतना आचरण करते न भी बने तो श्रद्धानसे मत डिगो।

श्रद्धानसे विचलित न होनेका अनुरोध—जो जीव श्रद्धानसे भ्रष्ट हो जाता है उसे भ्रष्ट माना गया है और जो आचरणसे भ्रष्ट है वह यद्यपि आचरणसे भ्रष्ट है, पर सम्यक्त्व यथार्थ रहने पर उसे भ्रष्ट नहीं कहा गया है, वह पुनः लग सकता है। जैसे लोकमें किसी बड़ेकी आन बनी रहे तो वह उद्दण्ड नहीं कहा जाता है, पर जब आन ही टूट जाय तो उसे उद्दण्ड कहा जाता है। एक ऐसा ही कथानक कहा जाता है कि एक पुरुषने सेठसे शिकायत की कि तुम्हारा लड़का तो पतित हो गया है, वेश्याके यहाँ जाया करता है। सेठ बोला कि हमारा लड़का अभी पतित नहीं हुआ है। वह पुरुष बोला चलो तुम्हें दिखायें। ले गया वेश्या के घरके पास तो उस सेठने उस वेश्याके घर बैठा हुआ उस लड़केको देख लिया। लड़केने भी सेठको देख लिया तो झट उस लड़केने अपनी अंगुलियोंसे अपनी आँखोंको बंद कर लिया। सेठ इस दृश्यको देखकर उस पुरुषसे कहता है कि देखो मेरा लड़का अभी भ्रष्ट नहीं हुआ है। अभी तक हमारे बच्चेमें हमारे प्रति आन है, आदर है। जब वह बालक घर आया तो सेठने उससे कुछ कहा तो झट वह उस सेठके चरणोंमें गिर गया और बोला कि मैंने बड़ी चूक की, अब मैं ऐसा न करूँगा। आन, प्रतीति, आन्तरिक नम्रता हो तो सुधारकी असुगमता नहीं है। इसलिए श्रद्धानसे कभी डिगना न चाहिए। समन्तभद्रस्वामी को परिस्थितिवश आचार्यने साधुपद छुड़ाकर किसी भी भेषमें रहकर भस्मव्याधि मिटानेका हुक्म दिया था। और किया भी था, परन्तु उनका श्रद्धान ज्योंका त्यों था, कुछ भी अन्तर न था। उनका श्रद्धान दृढ़ रहा। और उस सम्यक्त्वके प्रतापसे जो चमत्कार हुआ वह साधु होने के बाद सबको विदित है। तो कुछ करते बन रहा तब, नहीं करते बन रहा तब, सम्यक्त्व श्रद्धान यथार्थ बनाये रहें और अपनी शक्ति न छिपाकर उसके अनुरूप आचरण करनेमें प्रयत्नशील रहें, यही एक करनेका काम है।

निश्चयमोक्षमार्गका उद्भव—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रसे युक्त आत्मा ही निश्चयसे मोक्षका मार्ग है, क्योंकि वहाँ रत्नत्रयकी स्थितिमें जीवके स्वभावमें नियत होनेरूप चारित्र पाया जाता है। यह जीव किसी भी प्रकार अनादिकालीन अविद्याका विनाश होनेसे व्यवहारमोक्षमार्गको प्राप्त होता है। धर्मादिक तत्त्वार्थोंके श्रद्धान और अंग पूर्वोंके ज्ञान तथा

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

तपस्यावोंमें प्रवृत्तिके होनेरूप चारित्रका तो ग्रहण हुआ, ग्रहणके लिए व्यापार हुआ और धर्मादिक तत्त्वोंके श्रद्धान न होने आदिरूप जो मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र है उसके त्यागके लिए व्यापार हुआ और अब उस ही उपादेयभूत पदार्थके ग्रहणमें और त्याज्य पदार्थके परिहारमें बार-बार चलनेका अभिप्राय चला। सो जितने कालमें यह जीव उस ही आत्मस्वभावकी भावनाके प्रतापसे जब स्वभावभूत सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रके साथ अंगअंगीरूप परिणमन करके और फिर अभेदरूप परिणमन करके उस रत्नत्रयसे युक्त होता है उस ही कालमें यह जीव निश्चयसे मोक्षमार्गी कहा जाता है।

अद्वैतरूपता—छूटना है जीवको, और छूटनेका जो उद्यम है वह भी होता है जीवमें। तो जीव ही स्वयं मोक्षस्वरूप है और जीव ही मोक्षका मार्ग है। जब यह जीव रत्नत्रयसे युक्त होता है तो मोक्षमार्गी है और जब समस्त दोषोंसे छूट जाता है तब वही मोक्षस्वरूप है। निश्चयमोक्षमार्गमें और व्यवहारमोक्षमार्गमें परस्पर साध्य-साधन भाव है। निश्चयमोक्षमार्गका लक्षण है निश्चय शुद्ध आत्मतत्त्वकी रुचि होना और उस ही सहज शुद्ध अंतस्तत्त्वका परिज्ञान होना और उस ही निश्चलरूपसे अनुभव होना उसका साधन है व्यवहारमोक्षमार्ग। उस व्यवहारमोक्षमार्गमें गुणस्थानके क्रमसे विशुद्ध परिणाम होता हुआ यह जीव जब कहीं आगे सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्रमें अभेदरूप परिणत होता है तब वह आत्मा ही निश्चय मोक्षमार्ग कहलाने लगता है।

मोक्षपथका विकास—गुणस्थान सब मोक्षमार्ग हैं चतुर्थसे लेकर ऊपर तकके। १४वां गुणस्थान भी मोक्षमार्ग है। मोक्ष तो गुणस्थानसे अतीत है। अब समझ लीजिए कि मोक्षमार्गकी कितनी स्थितियां हो जाती हैं, डिग्रियां हो जाती हैं और चतुर्थ गुणस्थान सम्बंधी मोक्षमार्ग प्रकट हो उससे पहिले जो विचार चलता है, ज्ञान चलता है, यद्यपि सम्यक्त्वका वहाँ अभाव है, फिर भी वह ज्ञान यथार्थ है, जैसे कि वह सम्यक्त्वके होनेपर जानेगा वैसे ही सम्यक्त्वसे पहिले भी यह सम्यक्त्वका उन्मुख जीव जानता है। बस अन्तर इतना रहता है कि सम्यक्त्वके अभावमें वह ज्ञान सम्यक्त्वके सद्भावमें होने वाले ज्ञान जैसा खुदमें विशद नहीं है, इस कारण पूर्व ज्ञानको सम्यग्ज्ञान नहीं कहा।

विकाससे पूर्वस्थितिकी विशेषताका उदाहरण—जैसे कोई वर्णन नक्शे द्वारा पैमाइश द्वारा जाना जाय, जैसे किसी देशका वर्णन, नदीका वर्णन, महलका वर्णन कुछ नक्शोंसे जाना, उसकी लम्बाई, चौड़ाई विस्तार भी नक्शेसे जाना अथवा किसीने बताया एक तो वह ज्ञान और एक उसी मौकेपर जाकर उस सबको देखे एक वह ज्ञान। यद्यपि मौकेसे पहिले वाला ज्ञान वही वैसा ही था जैसा कि मौकेपर जाकर देखा, लेकिन मौकेपर जाकर देखनेसे होने वाले विशद ज्ञानकी तरह यह पहिले वाला ज्ञान विशद नहीं है। तब न सही विशद, पर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञान तो वहाँ ही हुआ ना, और उस ही ज्ञानके सहारेसे बढ़कर इसे सानुभव ज्ञान बना, यों बिना निश्चय सम्यक्त्वके भी इसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहा गया है। स्वरूपदृष्टिसे देखो तो सम्यक्त्व जगे बिना मोक्षमार्ग नहीं कहलायेगा, पर साधन तो वह भी है। वह भी व्यवहार-मोक्षमार्ग है। तो यों यह व्यवहारमोक्षमार्ग निश्चयमोक्षमार्गका साधन बनता है।

व्यवहारमोक्षमार्गका उपकार—यहाँ व्यवहारमोक्षमार्गके साधन द्वारा निश्चय मोक्ष-मार्गका वर्णन करते हुए यह बात बतायी गई है कि उन रत्नत्रयोंसे युक्त अथवा निश्चयसे न तो किसी अन्यको ग्रहण करता है और न किसी अन्यको छोड़ता है। ऐसी स्थिति जब उपयोग रूपसे भी हो जाती है तब वह निश्चयमोक्षमार्ग कहलाता है और श्रद्धामें तो यह स्थिति बनी है परको न करने, परको न छोड़नेके स्वभाव वाले निज चैतन्यस्वभावकी श्रद्धा बनी है, पर उपयोग इस तरह परिणत नहीं हो पा रहा था, अतएव तत्त्वार्थ श्रद्धान पदार्थका विविध ज्ञान और व्रत आदिक रूप प्रवृत्ति हुई थी वह है व्यवहारमोक्षमार्ग। इस प्रकरणसे हम आपको इस कर्तव्यकी शिक्षा मिलती है कि हम मूलमें ऐसा ही ज्ञान बनायें कि यह मैं आत्मा मैं ही हूं, न यह परका करने वाला है और न परका त्यागने वाला है। यह है अपने स्वरूप और अपने स्वरूप परिणमता रहता है। इस प्रकार केवल एक निज स्वरूपको देखनेका काम ही वास्तविक पुरुषार्थ है और इस ही पुरुषार्थसे उद्धार है, दुर्लभ नर-जीवनकी सफलता है।

जो चरदि णादि णिच्छदि अप्पाणं अप्पणा अणण्णमयं।
सो चारित्तं णाणं दंसणमिदि णिच्चदो होदि ॥१६२॥

सहजस्वभावका अवलम्बन—जो पुरुष अपने आत्मस्वरूपसे अपने आत्माको अपनी गुण पर्यायोंसे अभेदरूप आचरण करता है, जानता है, श्रद्धान करता है वह पुरुष चारित्र है, ज्ञान है, दर्शन है, इस प्रकार निश्चयसे स्वयं दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप होता है। प्रत्येक पदार्थ अद्वैत है, जो वह है वह ही स्वयं है। प्रत्येक समय वे पदार्थ परिणमते रहते हैं, अतएव प्रत्येक पदार्थका परिणमन भी अद्वैत है। जो वह है वह ही स्वयं है और प्रतिसमय वह परि-णमता रहता है, अतएव उसका समय-समयका प्रत्येक परिणमन भी अद्वैत है। यों जो कुछ भी सत् है वह अद्वैत है और उसका प्रत्येक समयका परिणमन भी अद्वैत है। उस परिणमन को उस द्रव्यसे जुदा नहीं किया जा सकता, और वह परिणमन उस द्रव्यका है इस प्रकार भेद भी नहीं डाला जा सकता है। है वह, और है का निर्माण ही इस तरह है कि वह होता रहे तब वह है है। न होता रहे तो वह है नहीं हो सकता।

सत्त्वके अर्थका मर्म—सत्त्वका मर्म बताने वाला एक व्याकरणका प्रसंग है। व्याकरणमें "होता है" की धातु है 'भू धातु—भवति।" इसका अर्थ है "होता है।" किन्तु भू का शुद्ध अर्थ क्या है ? तो बताया है भू सत्तायां। भू का अर्थ सत्ता है। हिन्दी में कहते हैं—

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
होता है और यथार्थ अर्थ है सत् होना। तब पूछा कि सत्ता किस शब्दसे बना है, किस धातु से बना है ? वह बना है अस् धातुसे। जिसका रूप चलता है अस्ति। तो अस्तिका लोकमें प्रसिद्ध अर्थ है 'है' लेकिन अस् धातुका भी व्याकरणमें अर्थ क्या किया है ? अस् भुवि। अस् धातुका अर्थ भू कर दिया और भू धातुका अर्थ अस् कर दिया। इसका अर्थ क्या है कि होना और सत् रहना—इन दोनोंका इतना घनिष्ट अविनाभावी सम्बंध है कि असके बिना भू नहीं रह सकता व भू के बिना अस् नहीं रह सकता। भू का अर्थ अस्में पड़ा है, अस्का अर्थ भू में पड़ा है। यहाँ दो बातोंको सिद्ध करते हैं कि उत्पाद व्यय ध्रौव्यमें पड़ा है और ध्रौव्य उत्पाद व्ययमें पड़ा है।

वस्तुकी निरख—अब सोचिये—हम वस्तुको किस निगाहसे निरखें ? 'है' यों है। इसके सिवाय हम पदार्थमें और कुछ बोलें तो यों समझिये कि हम पदार्थके टुकड़े-टुकड़े कर रहे हैं, उसे छेद भेद रहे हैं। जैसे किसी पदार्थका छेदभेद टुकड़ा करें तो उसे लोग तोड़ फोड़ कहा करते हैं, ऐसे ही पदार्थका विवरण करते हुए हम उसका गुण बतायें, उसका परिणमन बतायें और गुण भी अनन्त बता रहे, उसका विश्लेषण भी कह रहे तो बात तो हम विस्तारपूर्वक यों कह रहे हैं कि वस्तुका सही ज्ञान बन जाय, पर कहनेमें तो हम तोड़ मरोड़ कर रहे हैं और चाहते यह हैं कि यथार्थ वस्तुका ज्ञान हो जाय। यों देखा जाय तो कुछ थोड़ा हम उस लक्ष्यसे कुछ पंक्तिमें पीछे रूप बात बना रहे हैं, लेकिन निश्चयका प्रतिपक्ष यह व्यवहार है, उसका साधक है, बाधक नहीं है।

निश्चयस्वरूप—निश्चयके समक्ष यह व्यवहार उल्टी बात कह रहा है, तिस पर भी यह व्यवहार निश्चयका साधक है। उस समय यह आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप कहा जाता है, जब कि व्यवहारदृष्टि प्रधान है। निश्चयदृष्टिमें यह है और यों ही ज्ञानमें आ गया। जो आत्मा अपने ही द्वारा अपने ही आपमें आत्मामय होनेके कारण अपनेको अभिन्नरूप आचरण करता है, अपनेमें परिणमन करता है, स्वभावमें नियत जो एक अस्तित्व है उस रूप बर्तता है, आत्माको ही जानता है और अपने आपका प्रकाश करे इस प्रकारसे चेतता है, अपने आपके ही द्वारा देखता है। तो आत्मा स्वयं ही चारित्र ज्ञान और दर्शन रूप है।

अस्तित्वका दार्शनिक प्ररूप—अस्तित्वका दार्शनिक अर्थ है उत्पादव्यय ध्रौव्यमय अस्तित्वसे निवृत्त होना। कोई भी अस्तित्व उत्पादव्यय ध्रौव्यसे सूना नहीं होता। उत्पादका अर्थ है बनना, व्ययका अर्थ है बिगड़ना और ध्रौव्यका अर्थ है बना रहना। कोई पदार्थ बने नहीं, बिगड़े नहीं और बना रहे, ऐसा नहीं होता। कोई पदार्थ बिगड़े नहीं, बने और बना रहे ऐसा भी नहीं होता। कोई पदार्थ बना तो न रहे, किन्तु बने और बिगड़े ऐसा भी नहीं होता। बनना, बिगड़ना, बना रहना ये— तीनों अविनाभावी हैं और एक ही समयमें हैं। ऐसा भी
Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं है कि अमुक पदार्थ अभी बन रहा है तो बिगड़ेगा इसके बाद और बना था पहिले या आगे पीछे। ये तीनों ही तत्त्व पदार्थमें एक साथ होते हैं।

उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी अविनाभावितापर दृष्टान्त—जैसे सीधी अंगुली है और वह एकदम दूसरे ही समयमें टेढ़ी हो गई तो दूसरे समयमें वह अंगुली बने, बिगड़े, बनी रहे—ये तीन बातें एक साथ हैं। टेढ़ी तो बनी, सीधी बिगड़ी और अंगुली बनी रही। यदि ऐसा हो बैठे कि पहिले टेढ़ी यह कहे कि मुझे बन लेने दो, तुम पीछे बिगड़ना तो वह टेढ़ी हो ही न सकेगी। सीधी बिगड़नेके साथ ही टेढ़ी बनी हुई है या यह सीधी कहे कि पहिले मुझे बिगड़ लेने दो फिर तुम बनना, तो यह भी नहीं हो सकता कि पहिले सीधी बिगड़ले उसके बाद वह टेढ़ी बने। यदि तब टेढ़ी न बने तो सीधी बिगड़ भी नहीं सकती। यों सब पदार्थोंमें प्रतिसमय बनना, बिगड़ना और बना रहना होता ही रहता है। चाहे शुद्ध जीव हो, चाहे अशुद्ध जीव हो, अथवा अजीव पदार्थ हो, मूर्त अमूर्त हो। सभी पदार्थ प्रतिसमय बनते हैं, बिगड़ते हैं और बने रहते हैं। यह है पदार्थका स्वरूप।

हितके स्वाधीन उपायकी ऐषणा—भैया! हम भी प्रतिसमय दूसरेका सहारा लिये बिना अपने आपके अस्तित्वके कारण प्रतिसमय बनते हैं, बिगड़ते हैं और बने रहते हैं, ऐसे ही अन्य समस्त पदार्थ। अब बतलावो कि किसी एक पदार्थसे किसी दूसरे पदार्थका सम्बंध है कैसे? जब कोई पदार्थ किसी अन्य पदार्थमें अपना बना रहना नहीं दे सकता, अपना बनना नहीं दे सकता, अपना बिगड़ना नहीं दे सकता तो अब चौथा कौनसा रास्ता आप बनायेंगे? यों प्रत्येक पदार्थ अन्य समस्त पदार्थोंसे अत्यन्त जुदा है। न कभी किसीका स्वरूप किसी दूसरे में गया, न जायगा, न जा रहा है। यों प्रत्येक पदार्थका स्वरूप निरखकर जो भव्य जीव सहज ही परपदार्थोंसे उपेक्षा कर लेता है और इस सहज उपेक्षाके कारण निजमें सहज विश्राम कर लेता है उस जीवके सम्यक्त्वका अनुभव होता है। शान्तिके लिए इस जीवने अनेकानेक उपाय किये, किन्तु यह सुगम स्वाधीन उपाय इस जीवने नहीं किया। इस ही उपायको करने का यत्न होना चाहिए।

भोगरमणका परिणाम—कुटुम्बमें वैभवमें इनमें मौज मानने रमनेका फल बहुत विकट भोगना पड़ेगा। ये आसान लग रहे हैं परपदार्थोंके संयोग भोग, लेकिन ये बड़े महंगे पड़ेंगे। जैसे लोग कहते हैं कि सस्ता रोवे बार-बार, महंगा रोवे एक बार। कोई चीज आप खरीदते हैं, सस्ती जानकर खरीदते हैं तो आप उससे बार-बार अड़चन पाते रहते हैं। जैसे कोई पुरानी मोटर खरीद लाये तो उसमें बार-बार झंझट पड़ता है, रोज-रोज उसमें हैरानी रहती है व कुछ न कुछ खर्च लगा रहता है, किन्तु एक बार कोई महंगी नई मोटर ले आया तो उसमें झंझट नहीं पड़ता। एक मोटी बात कही है। ये संसारके सुख बड़े सस्ते लग रहे हैं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और पुराने भी हैं, अनन्तकालसे भोगते चले आए हैं। ऐसे ही ये सुख सस्ते हैं, पुराने हैं जीर्ण-शीर्ण हैं, आसान लग रहे हैं, किन्तु इनका फल बड़ा महंगा पड़ेगा, क्योंकि इनमें अपराध बना है परदृष्टिका। इन सांसारिक सुखोंके भोगमें माध्यम है परदृष्टि। परकी ओर जो दृष्टि बनाया है, अपने आपका आश्रय छोड़ दिया, परकी ओरका झुकाव बना लिया केवल दृष्टिमें, उपयोगमें तो ऐसे उपयोगमें प्रकृत्या विह्वलताका ग्रहण होता है, वहाँ शान्ति और सन्तोष नहीं हो सकता।

आत्मस्पर्शनका महत्त्व—यह आत्मदर्शन, आत्मज्ञान, आत्मआचरण है तो वास्तवमें सुगम स्वाधीन सहज, लेकिन यह आज तक स्थिति बनी नहीं, इसलिए बड़ा महंगा मालूम हो रहा है, कठिन मालूम हो रहा है, लेकिन इस समय लग रहे, इस महंगे कामको एक बार कर तो डालो, फिर अनन्तकालके लिए झंझट समाप्त हो जायेंगे। यह काम लग रहा है महंगा, किन्तु इसके निकट जानेपर यह सब बहुत आसान लगने लगता है। तो यों परद्रव्योंसे उपेक्षा करके अपने अंतरतत्वमें विश्राम करके जो एक सहज अनाकुलतारूप आल्हादका अनुभव होता है उस अनुभवसे परिणत आत्मा निश्चयमोक्षमार्ग है। इस स्थितिमें कर्ता, कर्म और करणका भेद नहीं रहा, उसकी दृष्टिमें नहीं रहा। भेद तो कभी होता ही नहीं, पर जो न मानें उनके लिए भेद है, जो मान जायें निजस्वरूपको उनके लिए भेद नहीं है। यह जीव जो कुछ भी रहता है वह वहाँ अभेदरूपसे ही रहता है, पर इस अद्वैतस्वरूपका जब आश्रय त्याग देता है तब भेद ही भेद नजर आता है।

अभेदानुभवकी शरण्यता—अभेदरूप रहते हुए, अभेद काम करते हुए भी अज्ञानी जीव चूंकि अपनी दृष्टिमें भेदरूप चल रहे हैं, अतएव वे निर्धन हैं। जैसे कोई पुरुष अपने घर की जमीनके भीतर गड़ी हुई लाखोंकी सम्पत्तिसे अपरिचित है, कुछ ख्याल ही नहीं है, कुछ अनुमान ही नहीं है, और वह जिस किसी प्रकारसे सूखी रोटियोंका सेजा लगाकर पेट पालता है। वह तो अपनी दृष्टिमें गरीब है, भले ही उसके घरके भीतर लाखोंका वैभव पड़ा है, लेकिन वह तो दीन ही बना हुआ है। यह एक मोटी बात कही है। यों ही आत्मामें अनन्त समृद्धि का वैभव है अभेदरूप, यह स्वयं अद्वैतरूप है, लेकिन इसका जिसे परिचय नहीं है वह तो दृष्टिसे भेदरूप बन रहा है। जब दृष्टि भी अभेदस्वरूपको अंगीकार करनेकी बन जाय उस समय यह जीव निश्चयमोक्षमार्गी होता है। वह आत्मा चारित्र ज्ञान दर्शनस्वरूप है। जीवके केवल शुद्ध चैतन्य स्वभावमें नियत है, वह निश्चयमोक्षमार्गी है। हमें यथासम्भव प्रयत्नोंसे इस शुद्ध निर्विकार निर्विकल्प ज्योतिके अनुभवमें आना है, यही हम आपका वास्तविक शरण है।

जेण विजाणदि सव्वं पेच्छदि सो तेण सोक्खमणुहवदि।
इदि तं जाणदि भविओ अभव्वसत्तो ण सद्दहदि ॥१६३॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भव्यका श्रद्धान—जिस कारणसे यह आत्मा समस्त वस्तुवोंको जानता है और सब ही को देखता है, अतएव वह अनाकुल अनन्त अमूर्त सुखका अनुभव करता है, इस प्रकार यह निकट भव्य जीव उस अनाकुल पारमार्थिक आनन्दको जानता है, उपादेयरूपसे मानता है। इस प्रकार अनाकुल सुखको जो जानते हैं वे तो निकट भव्य हैं और निकट कालमें वे मोक्षको प्राप्त करेंगे, लेकिन जो इस प्रकार अभी नहीं जान रहे, उनमें भी ऐसी मोक्ष पानेकी योग्यता भले ही हो, किन्तु वे अभी सुभवितव्यतासे दूर हैं और जो अभव्य जीव हैं उनमें ऐसी मोक्षपर्यायके व्यक्त होनेकी योग्यता ही नहीं है वे शुद्धात्माके अनन्तसुखका परिचय भी नहीं कर सकते।

सकल जीवोंमें स्वरूपसाम्य—भैया! भव्यत्व और अभव्यत्वका अन्तर होनेपर भी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी शक्ति सभी जीवोंमें है। चाहे भव्य हों और चाहे अभव्य हों। यदि अभव्यमें केवलज्ञानादिककी शक्ति न मानी जाय, स्वभाव न माना जाय तो फिर केवलज्ञानावरण नाम किस बातका? केवलज्ञानावरण उसे कहते हैं जो केवलज्ञानको प्रकट न होने दे, केवलज्ञानका आवरण करे। जिस अभव्यमें केवलज्ञानकी शक्ति ही नहीं है, स्वभाव ही नहीं है तो केवलज्ञानावरण प्रकृति क्यों बनेगी। जैसे इन खम्भा, चौकी आदिक जड़ पदार्थोंमें क्या वह ज्ञानावरण है? तो केवलज्ञानका स्वभाव प्रत्येक जीवमें है। वह तो जीवका स्वरूप है। हाँ केवलज्ञान प्रकट होनेकी शक्ति अभव्यमें नहीं है अथवा यों कहिये जिनमें केवलज्ञान प्रकट होनेकी शक्ति नहीं है वे अभव्य हैं। केवलज्ञानकी तो शक्ति है अभव्यमें, पर केवलज्ञानके प्रकट होनेकी शक्ति नहीं है। इन दो बातोंमें अंतर है। जैसे दृष्टान्त दिया जाता है बंध्या स्त्रीका। जिसे लोग बंध्य स्त्री कहते हैं, उसमें यद्यपि संतान होनेकी शक्ति है, पर संतान होनेकी शक्ति प्रकट होनेकी शक्ति नहीं है। यदि संतान होनेकी शक्ति न मानी जाय तो उसका नाम स्त्री ही नहीं हो सकता। ऐसे ही यदि केवलज्ञानकी शक्ति अभव्यमें न मानी जाय तो वह जीव ही नहीं कहला सकता। वह तो जीवका सहजस्वरूप है। हाँ केवल-ज्ञान शक्तिके व्यक्त होनेकी शक्ति अभव्यमें नहीं है।

द्रव्योंमें साधारणासाधारणगुणरूपता—यदि रंच भी फर्क आया किसी द्रव्यका किसी द्रव्यके साथ मूलमें तो वे एक जातिके न कहलायेंगे, दो जातिके हो जायेंगे। यदि ऐसा असीम ज्ञान शक्तिस्वरूप स्वभाव अभव्यमें न हो तो द्रव्य ६ के बजाय ७ कहना चाहिए—भव्य जीव, अभव्य जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल। उन दोनोंको एक जीव जातिमें नहीं रख सकते। जो साधारणस्वरूपमें पूर्ण समान होता है वह ही उस द्रव्यमें आया करता है।

जीवमें ज्ञान और सुखका स्वभाव व अविनाभाव—जीवमें समस्त ज्ञेयोंके जाननेका स्वभाव है और समस्त ज्ञेयोंके अवलोकनका स्वभाव है। यह स्वभाव जिसके व्यक्त हुआ है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अर्थात् समस्त ज्ञेयोंको जानता-देखता है वह अद्भुत अनुपम आत्मीय शाश्वत आनन्दका अनुभव करता है। जैसे प्रभुके ज्ञान और दर्शन असीम बन गए तो उसके साथ ही आनन्द भी असीम बन गया। कुछ-कुछ हम आप भी अंदाज करते हैं कि सुखकी दौड़ ज्ञानकी दौड़के साथ-साथ लगी रहती है। जिसका ज्ञान दर्शन असीम है और असीम होता है मोहके अभाव कारण तो उनका आनन्द भी असीम है।

आनन्दका यत्न—संसारीजन आनन्द पानेके लिए कोशिश तो किया करते हैं, पर कोशिश उल्टी चलती है। मोह रागद्वेषसे ज्ञानपर आवरण होता है और मोह रागद्वेषसे ही आनन्दका बिघात होता है। किन्तु संसारीजन आनन्दकी उपलब्धिके लिए मोह रागद्वेषकी ही प्रवृत्ति करते हैं। तो जैसे खूनका दाग खूनसे नहीं धुला करता ऐसे ही मोह रागद्वेषसे उत्पन्न हुआ कष्ट मोह रागद्वेषसे कभी मिट नहीं सकता। आनन्दकी उपलब्धिका उपाय ऐसा ज्ञानप्रकाश कर लेना है जिस ज्ञानप्रकाशके कारण मिथ्या आशय अथवा परवस्तुवोंमें प्रीति अप्रीतिका परिणाम न ठहर सके। इस उपायके सिवाय अन्य कोई उपाय है ही नहीं शान्ति पानेका। ऐसा जिसका ठोस निर्णय होगा वही धर्मपालन करनेका पात्र है अन्यथा धर्मके नाम पर कैसी ही मन, वचन, कायकी चेष्टाएँ कर ली जायें, जब उसका मर्मभूत अन्तरंग ही नहीं है तो धर्म नाम किसका है ?

विपरीत वृत्तिमें धर्मका अलाभ—जैसे चावलरहित धानके छिलकोंको खरीदकर कोई लाभ नहीं पाया जा सकता है। हाँ उसमें भी लाभ है। धानके छिलके भी बिकते होंगे। लेकिन चावलोंके भावमें कोई धानके छिलके खरीद ले तो उसमें सारा नुक्सान है। ऐसे ही धर्मके नामपर कोई व्यवहार क्रियाएँ करले और धर्मकी बात वहाँ है नहीं, निष्कषाय, निष्तरंग जो आत्माका शुद्ध ज्ञानप्रकाश है वह मेरा स्वरूप है, जो समस्त परसे न्यारा है और अपने सहज सत्त्वके कारण प्रबल है, समर्थ है, शाश्वत है, ऐसे निज अंतस्तत्त्वकी जिन्हें सुध नहीं होती और धर्मके नामपर व्यवहार क्रियाएँ करें, मनचाही धर्मकी चेष्टाएँ करें तो लाभ तो नहीं हो सकता। हाँ मन, वचन, कायकी शुभ प्रवृत्ति करे तो उससे लाभ है, पर वह लाभ उतना ही लाभ है जैसा कि भुस और छिल्केके भावमें भुस छिल्का लेनेसे जो लाभ है उतना ही लाभ है। यह कोई लाभ नहीं है, मोक्षमार्गका लाभ नहीं है। कुछ पुण्य बँध जायगा, थोड़ी विभूति मिल जायगी। वहीं संसारका जन्ममरण लगा रहेगा।

एकत्वका आदर—जिस पुरुषने अपने आपके स्वरूपको समझा है, यह मैं आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूं, सबसे न्यारा हूं वही जन्ममरणके चक्रसे निवृत्त हो सकता है। मरनेपर तो कोई जाता ही नहीं, यह तो प्रकट ही दिखता है। जन्मके समय कोई साथ आया नहीं, यह भी प्रकट दिखता है। जीवनमें कोई विपदा आ जानेपर वहाँ भी कोई साथ नहीं निभाता,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह भी प्रकट दिखता है। जरा और अन्तः प्रवेश करके स्पष्ट निर्णय कर लो कि यह जीव अपनी सब परिस्थितिमें सदा अकेला ही है। ऐसा अकेला रहना दोषकी बात नहीं है, गुणकी बात है। अकेला रहना कोई खराब नहीं है, अच्छा ही है। जो केवल अकेला रह जाता है उसका नाम है भगवान। अकेला होना बुरा नहीं है।

एकत्वके आदरके लाभकी एक घटना—जब चिरोंजाबाई जी, जिन्होंने बड़े वर्णी जी को पढ़ाया, १४ वर्षकी उम्रमें विधवा हो गयी थीं। गिरनारकी यात्रामें सब लोग गए हुए थे, उस यात्रामें ही पति गुजर गया। जल्दी घर आयीं, वहाँ लोग लुगाई सब घर आये तो उन्हें बहुत बुरा लगे। तो कभी उपवास कर लें आज हमारा उपवास है। आज हम मिलेंगी नहीं। कुछ यों दिन काटे। इससे पहिले तुरन्त वियोगके समय चित्तमें आया था कि कुवेंमें गिरकर मर जायें, अभी छोटी उम्र है, कैसे जीवन कटेगा? फिर सोचा कि गिरी तो सही मगर न मरी तो उससे भी कई गुना कष्ट होगा। खैर घर आयीं, यों उपवासमें कुछ समय बिताया और सोचा खैर अकेली रह गयी हैं तो यह कुछ बुरा नहीं है, अनेक झंझटोंसे बची, पतिकी परतंत्रतासे बची, बाल बच्चोंके व्यर्थके झंझटोंसे बची। अच्छा है। ज्ञानार्जनमें चित्त दिया और उन्होंने जो वास्तविक आनन्द लिया वह सबको विदित है, ऐसी धर्ममूर्ति थी चिरोंजा बाई जी, जिनकी सानीकी उनके समयमें महिला नहीं थी। बड़े-बड़े लोग जो धर्म-मर्ममें चकरा जायें, उसे यों ही सहज चलते-चलते सुलझा देती थीं। तो अकेला होना कहाँ बुरा है?

समागममें भी एकत्वप्रतीतिसे शान्ति—भैया! समागम भी मिला हो भरपूर तो वहाँ भी अकेला मानना भला है। बड़े भरपूर समागममें रहकर जो अपनेको अकेला नहीं समझ सकता है, मेरे बहुतसे लोग हैं इस तरहकी भ्रमबुद्धि बनाए है तो वहाँ पद-पदपर दूसरोंकी जरा-जरासी चेष्टापर उसे खेद होने लगता है। आपने देखा होगा किसी अपरिचित स्थानमें किसी अपरिचित व्यक्ति द्वारा कोई आपको कष्ट पहुंचे तो आप उतना बुरा नहीं मानते। आपमें वहाँ सामर्थ्य रहेगी कि मैं कष्टको सह लूं, पर आप व्याकुल न होंगे और किसी परिचित जगह में कोई परिचित पुरुष आपको विशेष कष्ट भी नहीं पहुंचा रहा, किन्तु जरासी कोई बात कह दे, इतनेपर आप विह्वल हो सकते हैं। यह अंतर किस बातका आया? वहाँ अपरिचित जगह में अपरिचितके सामने आप अपनेको अकेला समझ रहे थे। जब अकेला समझ रहे थे तब कष्ट न था। यहाँ परिचित स्थानमें परिचितोंके बीच आप अपनेको अकेला अनुभव नहीं कर रहे, इस कारण जरा-जरासी बातपर विह्वलता हो जाया करती है। यह तो एक गुण है। जिसे शान्ति पाना हो किसी भी स्थितिमें कितना भी समागम हो, सर्व समागमोंमें आप अपनेको अकेला अनुभवें।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एकत्वदर्शनका प्रताप—योगी जन जंगलके बीच वर्षों तक प्रसन्न रहा करते हैं, उनके अद्भुत आनन्द जग रहा करता है। वह आनन्द और किस बातका है? वे अपनेको सदा अकेला मान रहे हैं। अकेला माननेमें जो आनन्द है वह आनन्द समागममें नहीं है। समागम में रहकर भी अकेलेकी श्रद्धा हो तो वहाँ भी अन्तः आनन्द रह सकता है और इस अकेलेपन को माननेका चमत्कार भी निरखिये। जो इस एकत्वका आदर करता है वह अपने अकेलेपन को ही अपनाता है। उसके ऐसा असीम ज्ञान प्रकट होता है कि तीन लोक तीन कालके समस्त ज्ञेय पदार्थ उसके जाननेमें आ जाते हैं अर्थात् अकेला अनुभव करता है, वह सर्वज्ञ बन जाता है। जो अपनेको अकेला अनुभव न करके कुटुम्ब वाला, देह वाला, धन वाला अनेकरूप अपने को मानता है वह संसारमें रुलता है। छुटपुट ज्ञान और सुख मिल गए, इनमें ही राजी रह-कर सुखको भोगते रहते हैं। प्रभु समस्त ज्ञेयको जानते देखते हैं, इस कारण विशुद्ध आनन्दका अनुभव करते हैं और जो निकट भव्य जीव केवल इस एक अकेलेको ही जानते देखते हैं वे भी आनन्दका अनुभव करेंगे।

एक बराबर सबका अध्यात्मदर्शन—देखो भैया! एक बराबर सब। कितनी विलक्षण गणित है? सब कुछ कितना बराबर है? इस एक बराबर। इसे कोई मानेगा क्या? न्यायकी ज्ञानकी तराजूपर एक पलड़ेपर तो निज रख दो और एक पलड़ेपर अनन्तानन्त जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल उनकी भूतकालीन पर्यायें, भविष्यकालीन पर्यायें सब कुछ रख दो, और फिर भी बराबर कहलाये इसे कोई मान सकता है क्या? जाननहार लोग मान सकते हैं। प्रवचनसारमें तो यह स्पष्ट कहा भी है कि जो एकको जानता है वह सबको जानता है, जो सबको जानता है वह एकको जानता है, इसका भी भाव इस रूपमें निरखिये। प्रभु सर्वज्ञ देव अरहंत सिद्ध भगवान किसको जान रहे हैं? एकको जान रहे कि सबको जान रहे। एक को भी जान रहे, सबको भी जान रहे। तो क्या उस एकको और सबको यों ही समान कक्षमें रखे हुएके ढंगसे जान रहे हैं प्रभु सर्वज्ञ? नहीं। एकको जानते उर्फ सबको जानते। सबको जाननेसे मतलब एकको जानना। इस ढंगसे जान रहे हैं, कहीं इस तरह नहीं कि किसीने ११ चीजें जानी तो १० बाहरकी भी जानी और एक अन्तरकी भी जानी। यों नहीं। सर्व-ज्ञेयग्रहणात्मक उपयोगमय अपनेको प्रभु जानते रहते हैं।

परिणमनपद्धति—प्रभु सर्वज्ञ देव अपने ही प्रदेशोंमें हैं। जैसे आपका जीव आपके प्रदेशोंमें है, आप जो कुछ भी कर सकते हैं वह अपने ही प्रदेशोंमें कर सकते हैं, किसी परमें नहीं कर सकते। किसी परको आप हुक्म दें, सुधार करें, बिगाड़ करें वहाँ भी आप जो कुछ कर रहे हैं वह अपनेको कर रहे हैं, अपनेमें कर रहे हैं, आपकी कोई परिणति किसी दूसरे पदार्थमें नहीं बन रही। तो भगवान सर्वज्ञदेव भी जो कुछ कर रहे होंगे वह अपने ही प्रदेशों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org
में कर रहे हैं। क्या कर रहे हैं? उनका ज्ञान किस प्रकार परिणम रहा है? परिणम रहा है उनके आत्मामें ही, पर सर्वज्ञेयग्रहणरूप परिणम रहा है तो समस्त ज्ञेयोंके जाननरूप परिणमनसे परिणमते हुए केवल अपने आपको ही भगवानने जाना, एक ही को जाना। उसमें सबका जानना आ गया।

ज्ञानमें ज्ञेयाकारताका स्वभाव—युक्तिसे भी विचारिये—उस ज्ञानका स्वरूप क्या जो ज्ञेयको न जानता हो? भगवानके केवलज्ञानका और स्वरूप क्या? यदि वह ज्ञेयको जानता न हो। ज्ञेयका जानना ही तो ज्ञानका स्वरूप बन रहा है। तो उस समस्त ज्ञेयका जानन हुआ तब खुदका भी जानना हुआ। और यहाँ हम आप लोगोंके लिए यद्यपि हम सबको नहीं जान रहे हैं। जितना क्षायोपशमिक ज्ञान है उतना ही हम उन पदार्थोंको जान रहे हैं। लेकिन हम इन पदार्थोंपर दृष्टि न डालकर केवल अपने सहजस्वरूपको जानें तो इस एकको भी जानने का वह चमत्कार होगा कि समस्त ज्ञेय इसके जाननेमें आयेंगे। जिस जीवके सब कुछ जाननेमें पड़ा है उसे अनन्त आनन्दका अनुभव होता है—यह बात निकट भव्य जीवोंको विदित है। इस मर्मका जिसे परिचय नहीं है ऐसा अभव्य पुरुष उस सुखका श्रद्धान नहीं कर सकता है।

सिद्धोंका अनन्त सुख—अनेक लोग ऐसी शंका उठाते हैं कि लो, तपस्या की, शरीर छूटा, कर्म छूटा, यह जीव अकेला ही ऊर्द्धगमन स्वभावसे लोकके शिखरपर चला गया। वह क्या वहाँ सुख भोगता होगा, अकेला पड़ा है लोकके बिल्कुल किनारेपर, कैसे समय कटता होगा, क्या करते होंगे? यहाँकी बात लपेटकर और सिद्धमें भी सुखकी शंका करते हैं। अरे सिद्ध भगवानके कैसा सुख है, इसका तब तक परिचय नहीं हो सकता जब तक आप अपने आपमें बसे हुए एकत्वकी भावनासे उत्पन्न हुए अपने ही आनन्दको आप नहीं भोग सकते, उस शुद्ध आनन्दकी झलक आप नहीं ले सकते तब तक सिद्ध भगवानके आनन्दका आप परिचय नहीं पा सकते हैं। सुख क्या है? स्वभावके जो विरुद्ध है स्वभावके जो प्रतिकूल है, स्वभावकी जो प्रतिकूलताएँ हैं उनका अभाव होनेसे अपने आप जो स्वभावका एक शुद्ध विकास होता है वहाँ ही तो सुख है। आत्माका स्वभाव है दर्शन और ज्ञान। उन दोनोंके विषयका जो विरोध करे उसीका नाम है प्रातिकूल्य। ये प्रतिकूलताएँ सब मोक्षमें नहीं हैं। जो आत्मा समस्त ज्ञेयोंको जानता है देखता है ऐसे उस विशुद्ध आत्माके स्वभावकी प्रतिकूलताएँ रंच भी नहीं हैं। स्वभावकी प्रतिकूलताएँ विषयोंके भोगमें, विषयोंकी प्रवृत्तिमें संकल्प विकल्पमें पड़ी हुई हैं। इन सब प्रतिकूलतावोंका मोक्षमें अभाव हो जाता है और उन बाधावों का अभाव होनेसे अनाकूलता रूप परमार्थ आनन्दका मोक्षमें अनुभव अचलित रहा करता है।

परमार्थतः अमीरी और गरीबी—यह जीव स्वभावसे ही ज्ञानानन्दस्वरूप है। इस
Version 1

मर्मका जिसे विशद अवगम है उससे बढ़कर यहाँ कोई अमीर नहीं है। और जिसे इस ज्ञानानन्दस्वभावका परिचय नहीं है उस जीवसे बढ़कर गरीब दुनियामें कोई नहीं है। ये थोड़े समयके मिले हुए समागम अथवा विकल्प मौज ये सब स्वप्नवत् हैं, ये परमार्थ कुछ नहीं हैं। उस आत्माके ज्ञान दर्शनस्वभावके उस आनन्दका ज्ञान भव्य पुरुष ही जानते हैं। तो भव्य पुरुष ही मोक्षमार्गमें चलनेके योग्य हैं, इसका अभव्य श्रद्धान नहीं कर सकते। अतएव अभव्य जीव मोक्षमार्गके योग्य नहीं हैं। जितना भी अपने आपके स्वरूपकी ओर झुकाव होगा, अपने आपको अकेला मानकर और अधिक एकत्वस्वरूपमें जाना होगा उतना ही यह आत्मा विशुद्ध आनन्दका अनुभव करेगा।

लौकिक होड़की व्यर्थता—इस जगतमें लोग सुखकी होड़ लगा रहे हैं। दूसरेके सुखको देखकर या दूसरोंको मैं भी सुखी जंचूँ, इस ख्यालसे सुखकी होड़में लग रहे हैं। धनवान बननेकी होड़में ये मनुष्य दूसरे धनवान पुरुषोंको देखकर, मैं कहीं छोटा न कहलाऊँ, कहीं मेरी प्रतिष्ठा कम न हो जावे, यह सोचकर लोग धनिक बननेकी होड़ मचाये हुए हैं, लेकिन ये सबकी सब बातें किसे दिखाना चाहते हो? यहाँ आपका कोई साथी नहीं है, कोई हितू नहीं है, कोई मित्र नहीं है, कोई रक्षक नहीं है। किसे प्रसन्न करनेके लिए बाहरी सुख, बाहरी वैभव, बाहरी संचयकी धुनमें अपनेको लगाया जा रहा है? जो पुरुष उन सबसे परे आत्माके शुद्ध एकत्वस्वरूपको जानता है वह पुरुष विशुद्ध आनन्दका अनुभव करता है।

भव्यत्वका गौरव और उपयोग—इन संसारी जीवोंमें जो भव्य जीव हैं वे ही मोक्षमार्गके योग्य हैं, सब मोक्षमार्गके योग्य नहीं हैं। एक बात और विशेष समझना। इस जगतमें भव्य जीव अभव्यसे अनन्तगुणे हैं। अभव्य अत्यन्त कम हैं और फिर हम आपको ऐसी श्रद्धा बनानी चाहिए ही। है भी ऐसी बात कि हम आप सब ऐसी कक्षाके लोग तिर भी सकते हैं। हम सबका कर्तव्य है कि हम अपने उस ज्ञानदर्शन स्वभावकी श्रद्धा करके अपने एकत्वस्वरूपकी ओर झुकें और विशुद्ध आनन्द प्राप्त करनेका उद्यम करें।

दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गोत्ति सेविदव्वाणि।
साधूहि इदं भणिदं तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा ॥१६४॥

साधुसेवितव्य दर्शनज्ञानचरित्र—इस गाथामें इन दो मर्मोंपर दृष्टि डाली गयी है कि दर्शन, ज्ञान, और चरित्र—ये तो किसी प्रकार बंधके भी कारण हो सकते हैं किन्तु जीवके स्वभावमें नियत हो जाने रूप निश्चय चरित साक्षात् मोक्षका ही कारण होता है। साधुजनोंने यह बात बतायी है कि साधुजनो! दर्शन, ज्ञान और चरित्र, यह है मोक्षका मार्ग, इनका सेवन करना चाहिए, परन्तु उनके सेवनमें कभी बंध भी हो सकता है और मोक्ष भी होता है।

राग सम्बन्धसे दर्शनज्ञानचारित्रकी बंधहेतुता—दर्शन, ज्ञान, चरित्र कब किस प्रकार

http://www.jainkosh.org
बंधके कारण होते हैं, इसको भी दो दृष्टियोंसे सोचिये—एक तो शाब्दिक गुंजाइश की दृष्टिसे यह ही तो कहा ना कि दर्शन, ज्ञान, चरित्र कथंचित् बंधके कारण हैं, ठीक तो है। वे दर्शन ज्ञान, चरित्र यदि मिथ्या हैं तो बंधके कारण हैं और सम्यक् है तो बंधके कारण नहीं हैं। यह तो शाब्दिक गुञ्जाइशका निपटारा है। अब भीतरी मर्मकी बात सुनो। हम आपसे पूछें कि बतावो घी ठंडक पैदा करने का कारण है या जलानेका कारण है? उत्तर दो। क्या घी ठंडक पैदा करनेका कारण है? तो अच्छा सुनो! कड़ाहीमें पक रहे घी को डाल दे कोई तुम्हारे ऊपर तो ··· अरे क्यों भागते हो, घी तो ठंडक पैदा करनेका कारण है, ठीक है। घी यद्यपि शीतलता लानेका कारण है, परन्तु अग्निसे सम्बंधित होकर तो यह घी जलानेका ही कारण बनेगा। ऐसे ही समझिये कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र भी सम्यग्दृष्टियोंके भी ये तीनों हैं तो मोक्षके कारण ना? तब जब कभी रत्नत्रय शुभोपयोग और राग से सम्बधित है, रागी पुरुषमें है तो शुभोपयोगसे रागसे सम्बंधित यह रत्नत्रय स्वर्गका कारण बनेगा।

अद्वैतवस्तुका प्रतिसमय अद्वैत परिणमन—बन्ध और मोक्षकी हेतुताका बहुत विश्लेषण करें और उनके अंश अंशकी बात करें तो यों कह लेंगे कि जितने अंशमें रत्नत्रय है उतने अंशमें मोक्षका कारण है और जितने अंशमें राग है उतने अंशमें वह संसारका कारण है, लेकिन यह अंश आपके दिमागमें ही तो है। आत्मामें प्रकट तो कहीं जुदा अंश नहीं पड़ा है? वहाँ तो जो कुछ है प्रतिसमयमें एक ही परिणमन है। अद्वैत पदार्थ है और प्रतिसमयमें अद्वैत परिणमन है। जैसे उस घी के सम्बन्धमें भी कह सकते हैं, जो कड़ाहीमें उबल रहा घी है, उसमें जितने अंशमें घृतपना है उतने अंशमें यह शीतलताका कारण है और जितने अंश में गर्मीका सम्बन्ध है उतने अंशमें जलानेका कारण है, मगर उस घी में यह शीतलताका हेतुभूत और जलानेका हेतुभूत अंश जुदा-जुदा कहाँ पड़ा है? वह तो एक हो रहा है। जिस प्रकारसे भी वह परिणत है उस प्रकारसे वह एक है। तब यही बात हुई ना कि जैसे अग्निसे सम्बन्धित उबला हुआ घी विरुद्ध कारणरूप होता है ऐसे ही किसी भी मात्रामें शुभोपयोगकी परिणतिसे सम्बन्धित ये दर्शन, ज्ञान, चारित्र बंधके कारण भी होते हैं।

दर्शनज्ञानचारित्रमें मोक्षहेतुताका आविर्भाव—ये दर्शन ज्ञान चारित्र मोक्षके कारण कब होते हैं? इसे जैसे कि उस घीमें से अग्निका सम्बलन दूर हो जाय तो वह घी अब विरुद्ध कार्यका कारण नहीं रहा अर्थात् जलानेका कारण नहीं रहा, इस ही प्रकार जब सर्व प्रकारके परसमयोंकी परिणति दूर हो जाती है और स्वसमय परिणतिसे लग जाता है तब वह मोक्षका कारण ही होता है, बंधका कारण नहीं है। जीवस्वभावमें नियत होनेरूप जो चारित्र है वह तो साक्षात् मोक्षमार्गका कारण है अर्थात् सर्व प्रकारसे जो स्वसमय परिणत है वह
Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

साक्षात् मोक्षका मार्ग है। जैसे अग्निके संयोगसे स्वभावसे शीतल होने वाला भी घी दाहका कारण बन जाता है, ऐसे ही पंचपरमेष्ठी आदि पावन द्रव्यके आश्रयसे बने हुए जो भक्ति आदिक परिणाम हैं इन परिणामोंसे सहित जो परिणमन है, रत्नत्रयरूप प्रवर्तन है वह भी साक्षात् पुण्यबंधका कारण होता है, और अत्यन्त मोटी बात जैसे पहिले शाब्दिक गुंजाइशमें बताया था, मिथ्यात्व, विषयकषाय निमित्तभूत परद्रव्योंका आश्रय करके होने वाला जो दर्शन ज्ञान चारित्रका परिणमन है वह तो पापबंधका ही कारण होता है। इससे यह निश्चित कर लीजिए जीवके स्वभावमें नियत होनेरूप चारित्र ही मोक्षका मार्ग है।

दृष्टिकी चारकता—सब कुछ जीवकी एक दृष्टि लगनेकी बात है। लग जाय जीव इस ओर तो उसका कुछ भविष्य ही उज्ज्वल होने लगता है, और लग जाय पापोंकी ओर तो उसका भविष्य भी सब गंदा हो जाता है। यहाँ भी केवल दर्शन ज्ञान चारित्रका परिणमम किया और शुद्ध पथमें लगनेपर भी दर्शन ज्ञान चारित्रका परिणमन किया। न यहाँ संसारमें फंसनेकी परिणतिमें भी कुछ अन्य हाथ लगा और मोक्षमार्गमें भी कुछ अन्य हाथ लगनेकी कथा ही क्या है, वह तो स्वके उपलम्भ स्वरूप है। संसारमार्गमें चाहते हुए भी जीवको कुछ मिलता नहीं है बाहरमें। मोक्षमार्गमें भी मिलता नहीं, लेकिन यह चाहता भी नहीं। इतना अन्तर है। संसारमार्गकी चाह है, पर मिलता कुछ नहीं है, मोक्षमार्गमें चाह भी नहीं है, मिलता भी नहीं है बाहरसे कुछ। इस प्रकार इस निश्चय मोक्षमार्गके प्रकरणमें "जीव आत्मस्वभावमें नियत रहे, यही शान्तिका उपाय है," यह बात बताई गयी है।

अण्णाणादो णाणी जदि मण्णदि सुद्धसंपओगजुदो।
हवदित्ति दुक्खमोक्खं परसमपरदो हवदि जीवो ॥१६५॥

सूक्ष्मपरसमयपनेका आख्यान—जैसे लोग कहते हैं कि अपने ही घरमें बैठा हुआ गुप्त दुश्मन अधिक खतरनाक होता है। यद्यपि प्रकटरूपसे आपत्ति उपसर्गोंका आना व्यक्त दुश्मनों की ओरसे होता है। घरमें छुपे हुए दुश्मनसे कोई बिगाड़ सामने नजर नहीं आता, लेकिन वह भी जड़ काटने वाला दुश्मन है। ऐसे ही मिथ्यात्व विषयकषाय हिंसा आदिक पाप ये सब व्यक्त दुश्मन हैं और इनसे जीवका बिगाड़ है, जीवकी अवनति है, ये प्रकट जाहिर हैं, किन्तु इन व्यक्त दुश्मनोंको दूर कर देनेपर भी अन्तरङ्गमें कोई बैरी बसा हुआ होता है जो बड़ा सुहावना लगता है और यह बैरी है, इस प्रकारका कि उसपर संदेह भी नहीं होता। उस आत्मबैरीकी चर्चा इस गाथामें की गई है अर्थात् सूक्ष्मतासे परसमयपनमें क्या होता है उसका इसमें वर्णन किया गया है। ज्ञानी पुरुष अर्थात् सराग सम्यग्दृष्टि जीव अथवा व्यवहारसम्यग्दृष्टि जीव कदाचित् अज्ञानभावसे कोई सूक्ष्म विवेक न होनेसे ऐसा मानते कि शुद्ध जो अरहंत आदिक पदार्थ हैं, उनके लगावसे, उनके लगनेसे, शुभोपयोगसे, दुःखोंसे छुटकारा होता है, ऐसा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समझ ले तो उस जीवको परसमयमें अनुरक्त हुआ समझिये।

प्रभुभक्तिमें उपकार व रागलेशका बंध—अरहंत आदिक भगवान ये सिद्धिके साधनीभूत हैं। जैसे कहते हैं ना कि जो यह जिनवाणी न होती तो हम मोक्षमार्गमें कैसे लगते ? तो किस भांति पदारथ हांति कहाँ लहते रहते अविचारी। तो इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि अरहंत भगवान हम सब भव्य जीवोंकी सिद्धिके साधनभूत हैं, उनका बहुत उपकार है। यहाँ हम आप संसारी जीव किसीकी सहायतासे कुछ अपनी आजीविकका साधन बना लेते हैं तो उसका बहुत बड़ा आभार मानते हैं जो कि सब मोहकी निद्राके स्वप्न हैं, फिर उनके उपकार का कौन वर्णन कर सकता है जिनकी दिव्यध्वनिकी परम्परासे चला आया हुआ यह समस्त उपदेश है जो अन्तरङ्गके मिथ्या भ्रमको दूर करके एक सम्यग्ज्ञानका प्रकाश करा देता है, उसके उपकारका ऋण कौन चुका सकता है ? जीवके सुख दुःख आनन्दका सम्बंध तो ज्ञानकी पद्धतिसे है, बाहरी चीजोंसे नहीं है। जिस ज्ञानपद्धतिसे आनन्द प्राप्त हो सके वह ज्ञानपद्धति जिसकी कृपासे बन जाय उसके उपकारका ऋण कौन चुका सकता है ? भगवंत अरहंत परम उपकारी पुराण पुरुष हैं, उन अरहंत परमेष्ठियोंकी भक्तिके फलसे अनुरंजित अर्थात् धर्मानुराग करते हुए जो चित्तवृत्ति है उसका नाम है शुद्ध संप्रयोग। शुद्ध पावन चैतन्य द्रव्यमें उपयोग का जो भली प्रकार प्रयोग है वह है शुद्ध सम्प्रयोग। ठीक है, उसे जान लें, शुद्धका उपयोग करें, शुभोपयोग करें, पर अज्ञानका लेशमात्र होनेसे ज्ञानवान होकर भी यदि कोई ऐसा मान बैठे कि इस शुद्ध सम्प्रयोगसे मोक्ष होता है तो इस अभिप्रायसे उसे विधिबन्ध होता है व खेद पहुंचता है।

वस्तुस्वातन्त्र्यके प्रतिकूल विचारमें खेद—विकल्प करना और विकल्पोंसे अनुरंजित होना, यह तत्काल खेदको उत्पन्न करने वाली वृत्ति है। शुभोपयोगसे मोक्ष होता है—इस प्रकारकी श्रद्धा, इस प्रकारके विकल्पसे ही उसे अविदित खेद पहुंच रहा है। जो बात जहाँ यथार्थ नहीं है, जो बात जहाँ फिट नहीं बैठती है उसको वहाँ जोड़नेके समय खेद तो होता है। आप किसी मशीनमें कोई पेंच पुर्जा लगायें, मान लो एक ढिबरी ही लग रहे हैं और वह किसी दूसरी कीलीपर लगाया है, फिट नहीं बैठती है तो चित्त दुःखी हो जाता है, खिन्न हो जाता है। देखो है मामूली-सी बात, पर उसमें ही आप खेदखिन्न हो जाते हैं, और जब वह ढिबरी ठीक फिट हो जाती है तो वहाँ आप खुश होते हैं। ऐसे ही कोई आशय बने भीतरमें जो आशय वस्तुस्वरूपके विरुद्ध हो उस आशयके करने मात्रमें ही खेद उत्पन्न होता है, और फिर उससे जो काम बिगड़ेगा उसका खेद होगा वह अलग बात है, पर तत्काल ही एक विरुद्ध आशय होनेपर खेद होता है यह तो उसी समयका उसका ही काम है। तो जब यह जीव ज्ञानवान होकर भी इस शुभ रागसे मोक्ष होता है इस अभिप्रायसे खेद करता है उस शुभ राग

Version 1

में प्रवृत्ति करता है तब तक वह भी रागका सद्भाव होनेसे परसमयरत कहा गया है।

विरोधीसे सावधानी—जैसे कोई पुरुष बहुतसे दुश्मनोंमें घिर जाय तो वह बुद्धिमान पुरुष क्या करता है ? उनमें फूट डाल देता है। इससे बहुतसे दुश्मनोंसे वह रक्षा कर लेता है और जिनमें रह जाता है उनके सम्बन्धमें भी जानता वह सब है कि इससे भी हमें छूटना है, यह भी मेरा बैरी है। जैसे पहिले समयमें कुछ ऐसी घटनाएँ हुई हैं यहाँ भारतमें कि अंग्रेजों के राज्यमें कोई इन्हीं भारतीयोंमें एक दूसरेको आपसमें मार दे या बरबाद कर दे, ऐसा करने वालोंके लिए प्रलोभन दिया, इनाम देनेके लिए बोल दिया। पर जब उन्हें मार दिया, बरबाद कर दिया और इनाम लेने अथवा सम्मान लेने गए तो यह उत्तर दिया गया कि तुम्हारा क्या विश्वास ? जब तुम अपने भारतीयोंके भी होकर नहीं रहे तो तुम हमारे होकर कहाँ रहोगे ? यों ही समझिये कि यह ज्ञानी चतुर जीव भी सर्वप्रकारके सूक्ष्म रागोंसे भी सावधान रहता है, सूक्ष्म रागमें वह भक्ति करता है, परोपकार करता है। सब कुछ करके भी जानता यह है कि रागका लेशमात्र भी हमारे लिए अहितकर है।

सूक्ष्म परसमयतासे भी निवृत्तिकी दृष्टि—देखो भैया ! ऐसा भी पुरुष जो प्रभुकी भक्ति करके यह मानता हो कि हमारा तो मोक्ष निश्चित हो गया, हम रोज प्रभुभक्ति करते हैं, रोज पूजा करते हैं, उस जीवका जो परद्रव्योंके प्रति आकर्षण है राग है उस रागके सद्भावसे उसे परसमयरत कहा गया है। भला बतलावो जब ऐसा ज्ञानी निर्मल परोपकारी उदार, जो विषयोंमें भी आसक्त नहीं है, जिसे परिग्रहका भी कोई ममत्व नहीं है ऐसा यह पुरुष प्रभुकी इतनी विशेष भक्ति करके भी इतनी सी बातके कारण यह परसमयरत बन गया तो जो लोग निरंकुश स्वच्छन्द रागकी कालिमासे कलंकित चित्त वाले हैं उन जीवोंके लिए तो क्या कहा जाय ? अथवा इस प्रकरणमें संभले हुएको समझाया जा रहा है इसीलिए उस सूक्ष्म दोषकी भी बात निकाली जा रही है।

शुभानुराग—भगवानका यह उपदेश है कि हे भव्य जीवो ! तुम सब अपने स्वरूपको निहारो और भले ही हमारा सहारा लेकर अर्थात् हमको स्मरण करके, भक्ति करके कुछ अपनी तैयारी बना लो, ठीक है लेकिन हमारा भी ध्यान छोड़कर, हमारा भी आस्रव तज कर अपने अन्तःप्रकाशमान उस शुद्ध परमब्रह्ममें ही तुम लीन हो, इसमें ही तुम्हारा गुजारा है, कितना स्पष्ट उदेपश है। रागी भगवान तो यह कोशिश करता है कि तुम एक मुझको ही शरण मानो, अन्यत्र किसीकी शरणमें मत जावो तो तुम्हारा उद्धार होगा। लेकिन वीतराग-सर्वज्ञदेवके उपदेशमें ऐसे बहकावाकी और दबावकी कोई बात नहीं है। कोई पुरुष निर्विकार शुद्ध आत्माकी भावनारूप परम उपेक्षा संयममें ठहरनेकी इच्छा तो कर रहा है, लेकिन उस परम उपेक्षाभावमें, उस समतापरिणाममें ठहरनेके लिए असमर्थ हो रहा है। तब ऐसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्थितिमें काम, क्रोध ग्रादिक राक्षस इस पर ग्राक्रमण कर दें ऐसी गुञ्जाइश है लेकिन ये ज्ञानी जीव क्या करते हैं कि उन काम क्रोधादिक ग्रशुद्ध परिणामोंसे बचनेके लिए ग्रौर संसारकी स्थितिका भी छेदन बना रहे इसके लिए पंचपरमेष्ठीमें भक्ति करते हैं, उनके गुणोंका स्तवन करते हैं। जब यह शुभोपयोग किया जा रहा है तब उस समय तो वे सूक्ष्मकषायोंसे परिणत हैं ना, ग्रतः वहाँ भी शुभानुरागका बन्ध है।

कषायपंक्ति—इन्द्रियके विषयोंमें लगे वह तो तीव्र कषाय है, लेकिन भगवद्भक्ति, यह भी ग्रकषाय ग्रवस्थामें नहीं होती। सूक्ष्म कषाय है, शुभ राग है उसमें यह ग्रवस्था हो रही है, ऐसा सूक्ष्म परसमयमें परिणत होता हुग्रा यह सराग सम्यग्दृष्टि जीव है, वही सम्यग्दृष्टि जीव जो शुद्ध ग्रात्माकी भावनामें तब भी समर्थ तो था, पर कषायोंके वेगमें कर नहीं रहा था, ग्रब वह उस सूक्ष्म भी कषायपरिणतिको त्यागकर निवृत्त होता है, सूक्ष्म रागसे भी निवृत्त होकर वह स्वसमय बनता है, लेकिन शुद्ध ग्रात्माकी भावनाको त्यागकर शुभोपयोगसे ही मोक्ष होता है, ऐसा वह बन जाय, हठ कर जाय तो वह स्थूल परसमयसे परिणत हो जाता है। तब ग्रज्ञानसे यह जीव नष्ट हो जाता है, बरबाद हो जाता है।

रक्षक ज्ञान—इस जीवको बचाने वाला, रक्षा करने वाला एक ज्ञान है ग्रौर ज्ञानोंमें ज्ञान वही है जो ज्ञान ग्रपने ज्ञानके स्वरूपको जानता रहे ग्रौर यह प्रतीतिमें लेता रहे कि मैं तो यह ज्ञानमात्र हूं। जिन ग्रसमानजातीय द्रव्यपर्यायोंसे इन मायामयी मनुष्योंको रिझानेके लिए हम ग्रपने स्वरूपसे चिगकर नाना विभाव परिणमनोंमें ग्राते हैं—न तो ये लोग कोई साथ देंगे ग्रौर न कोई यहाँ की परिणति साथ देगी। ये सब संसारमें रुलानेके कारण हैं। कुछ क्षण तो हम इस परमपुरुषार्थको ग्रपनाएँ कि सर्व परद्रव्योंसे, परभावोंसे परम उपेक्षा करके शाश्वत निज चैतन्यस्वभावमें ग्रपनी दृष्टि करें, यही है कल्याणका साधन। इस गाथामें सूक्ष्म परसमयका स्वरूप बनाकर इस ज्ञानी जीवको उस सूक्ष्म कषायसे रागसे भी दूर होनेका उपदेश किया है।

ग्ररहंतसिद्धचेदियपवयणगणणाणभत्तिसंपण्णो ।
बंधदि पुण्णं वहुसो ण हु सो कम्मक्खयं कुणदि ॥१६६॥

शुभोपयोगसे पुण्यका बन्ध—शुद्ध पदार्थोंमें लगे हुए उपयोगके प्रयोगके समय जो परिणति होती है वह परिणति कथञ्चित् बंधका कारण है। इस कारण यह शुभोपयोग मोक्षमार्ग रूप नहीं है ग्रर्थात् शुभोपयोग पुण्यका बंध करने वाला है, किन्तु समस्त कर्मोंका क्षयरूप जो मोक्ष है उसको नहीं करता। वह शुभोपयोग शुद्ध ग्रौर शुद्धके निर्देशक पदार्थोंके ग्राश्रयसे उत्पन्न होता है।

ग्रर्हद्भक्तिका शुभ उपयोग—शुभोपयोगोंमें सर्वप्रथम स्थान है ग्रर्हद्भक्तिका। ग्रनन्त-

Version 1

ज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति और अनन्तआनन्दसे सम्पन्न परमात्मतत्त्वमें रुचि जगना सो अर्हद्भक्ति है। रुचि उसे कहते हैं जो ग्राह्यताके रूपसे प्रकट होती है। यह चीज ग्रहणकी वाचक है, मेरे लगावके लायक है, मेरे लिए हितरूप है। इसी प्रकारकी बुद्धिको जो उत्पन्न करे उसे कहते हैं रुचि। प्रभुकी यह अनन्त चतुष्टयरूप गुणभक्ति जीवको उपादेयरूपसे विदित है। इस अर्हद्भक्तिसे सम्पन्न होते हुए, उनके गुणोंका स्मरण करके, उन गुणोंके चमत्कारको दृष्टिमें रखकर अतिशयसे आनन्दमग्न होता हुआ यह जीव बहुत प्रकारसे अर्थात् अतिशयरूपसे पुण्य का बंध करता है।

सिद्धभक्तिका शुभ उपयोग—सिद्ध भगवान भी परमात्मा हैं, अरहंत भी परमात्मा हैं। केवल एक अघातिया कर्मका उदय और अघातिया कर्मोंका उदय है और इस ही कारण शरीर आदिकसे वे सहित हैं, किन्तु सिद्ध भगवान अष्टकर्मोंसे रहित हैं, इस कारण शरीरादिक से भी रहित हैं। उन सिद्ध भगवानके उस शुद्ध आत्यंतिक कैवल्यस्वरूपका स्मरण करना और ग्राह्यतारूपसे अर्थात् यही मेरा स्वरूप है, इस ही में सत्य अनाकुलता है, यों उपादेयताकी पद्धतिसे उनमें रुचि उत्पन्न करना सो सिद्धभक्ति है।

चैत्यभक्तिका शुभ उपयोग—चैत्यभक्ति चैत्य अर्थात् चित्स्वरूपका प्रतीक, जो दृष्टि-गोचर प्रतिबिम्ब है उसे चैत्य कहते हैं। चैत्य चित्स्वरूपमें पाये जाने वाले भावका भी नाम है। इसलिए परमार्थसे चैत्य तो हुआ आत्मस्वरूप और इसके पश्चात् और उपचारमें बढ़ें तो चैत्य हुए अरहंत सयोगकेवली। वह चैत्य जिस शरीरमें रह रहा है उस शरीरका नाम भी चैत्य है। अब और आगे चलिए तो सयोगकेवलीका प्रतिबिम्ब, जिसमें स्थापना की है, ऐसी जो मंदिरमें विराजमान प्रतिमा है उसका भी नाम चैत्य है, और चैत्यालय भी जो चैत्यका घर है उसे चैत्यालय कहते हैं। तो परमार्थसे चैत्यालय तो शुद्ध जीवास्तिकाय है। जिसे लोग कहते हैं मन्दिर, चैत्य अर्थात् चैतन्यस्वरूप। उसका जो आलय है, घर है वह वही जीवा-स्तिकाय है। कोई पूछे—कहाँ बस रहा है यह चैतन्यस्वरूप ? तो उत्तर मिलेगा कि जीव आत्मप्रदेशोंमें बस रहा है। तो चैत्यालय शुद्ध जीवास्तिकायका नाम है, और उपचारमें चलें तो जो सयोगकेवलीका परमौदारिक जो दिव्य शरीर है, वह है चैत्यालय, क्योंकि ऐसा चैतन्य-स्वरूप उसमें बस रहा है। फिर और चलो तो चैत्य प्रतिबिम्बका जो घर है सो चैत्यालय है, वह है मंदिर। चैत्यकी भक्ति करना, जीवस्वरूपकी भक्ति करना, सयोगकेवलीकी भक्ति करना और मंदिर चैत्यालयकी भक्ति करना यह सब चैत्यभक्ति है। चैत्यभक्तिमें व्यक्त हुआ जो शुभोपयोग परिणमन है वह परिणमन पुण्यका बंध करता है, किन्तु सकल कर्मक्षयको उत्पन्न नहीं करता है।

प्रवचनभक्तिका शुभ उपयोग—प्रवचनभक्ति प्रवचन नाम है आगमका। जो प्रामा-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

णिक वचन हों, उन्हें प्रवचन कहते हैं। आप्त सर्वज्ञदेवके वचन प्रामाणिक वचन हैं। अतः उस आगमका नाम है प्रवचन। प्रवचनकी भक्ति करना, प्रवचनमें जो तत्त्व कहा गया हो, स्वरूप बताया है उस स्वरूपका आदर करना, वस्तुस्वरूपका अवगम करना और वस्तुस्वरूपका अवगम करानेमें साधनभूत इस प्रवचनका उपकार मानना सो प्रवचन भक्ति है। प्रवचनका हम आप लोगोंपर बड़ा उपकार है। न होते ये जिनवचन तो हम न जाने किस दिशामें बहे होते? मिथ्यात्वके प्रवाहमें बहकर कुगतियोंमें जन्म लेते फिरते और आज भी कोई पूर्ण सन्तोषकी बात नहीं है। यदि न चेते तो यही काम आगे होगा, मिथ्यात्व वासनासे अनुरक्त होकर यों ही कुगतियोंमें जन्म लेते फिरेंगे। इस कारण बहुत बड़ी जिम्मेदारी है इस मनुष्यभवकी। संसारके समस्त संकटोंसे छूटनेका उपाय इस भवमें बन सकता है। इस ओर दृष्टि न दें ममतामें, परिजनोंमें, वैभवमें, तृष्णावोंमें ही अपने आपको रमाये रहें तो यहाँ कोई जानने वाला तो है नहीं, अथवा शरण सहाई कोई है नहीं। मोहकी नींदका स्वप्न देखकर चल बसेंगे और फिर यदि कीड़ा मकोड़ा वनस्पति हो गए तो फिर कौन पूछने वाला है? व्यवहार भी फिर वहाँ न चलेगा। इससे अपनी बड़ी जिम्मेदारी माननी चाहिए।

मनका निरोध करके अध्यात्मदर्शनकी प्रेरणा—भैया! मनने जैसा हुक्म दिया, इन्द्रिय विषयोंकी भक्ति की, प्रेरणा की तो उस ओर नहीं बहना चाहिये, जरा रुकना चाहिए, उसमें न बहें। इस मनको समझा दें। इन क्षणिक सुखोंमें तेरा गुजारा न होगा। तेरा गुजारा तो जो तेरा शुद्ध स्वरूप है उस स्वरूपकी रुचि कर, उसमें मग्न रह, उसका ही आदर कर, उसमें ही बस, तो तेरा सत्य गुजारा चलेगा। ऐसा अपने मनको समझायें और इन विषयोंमें, ममताओंमें, परिग्रहोंमें आसक्ति न उत्पन्न हो, ऐसा प्रयत्न करें। इस ही प्रयत्नसे हम आप सबका यह जैनशासनका पाना भी सफल होगा। प्रवचनभक्ति सातिशय पुण्यका बंध करायेगी, पर मोक्ष उत्पन्न न करायेगी। लेकिन ये सब हमें इस प्रकारके पात्र बनाने वाले हैं कि जिससे मोक्षके साक्षात् साधनभूत इस निश्चयदृष्टि अथवा स्वानुभूतिका आलम्बन ले सकेंगे।

साधुभक्तिका शुभ उपयोग—मुनियोंकी भक्ति—जैसे हम आपके पड़ौसमें कोई गृहस्थ धर्मात्मा है, उदार है, ज्ञानी है, नम्र है तो उसकी छाप हमपर बहुत अधिक पड़ती है, क्योंकि वह सामने है, और इतिहासके पन्नोंमें जिन बड़े उदारचित्तोंका, नायकोंका, संतोंका नाम लिखा हुआ है और पढ़ते हैं उनका इतना प्रभाव शीघ्र नहीं पड़ता जितना कि एक दिखने वाले साधारण गृहस्थमें उदारता, परोपकारशीलता, ममताका न होना, सबके काम आना, व्रतमें, तपश्चरणमें, प्रभुभक्तिमें लगना। इन बातोंको देखकर प्रभाव बनता है, ऐसे ही समझिये कि सिद्ध प्रभु तो ओझल हैं और होते भी यहाँ तो आँखों क्या दिख सकते थे? अरहंत भगवान कभी यहाँ दीखा करते थे, किन्तु आज नहीं हैं और अब भी वह आगम गम्य हैं, युक्ति और

Version 1

अनुभवसे भी गम्य हैं, किन्तु साक्षात् यत्र-तत्र क्वचित् मिल जाने वाले साधु संतोंके दर्शनसे हम अपनेमें तात्कालिक प्रभाव पाते हैं। जब हम उन साधुवोंके गुणोंपर दृष्टि देते हैं, इनका ज्ञान, इनका झुकाव केवल एक शुद्ध चैतन्यस्वरूपकी ओर रहा है। जगतके बाह्य आडम्बरोंसे कुछ प्रयोजन नहीं है, कैसी क्या बीत रही है, देहपर भी क्या गुजर रहा है, इस ओर भी ये विकल्प नहीं करते। एक शुद्ध ज्ञायकस्वरूप अंतस्तत्त्वकी ओर इनका ध्यान रहता है। जो अंतस्तत्त्व निर्विकल्प विकल्मष समतारससे परिपूर्ण है ऐसे अभंग वैराग्यसम्पन्न ज्ञानपुञ्ज साधुके गुणोंपर दृष्टि देते हैं, उस समय जो एक स्वरूपरुचि जगती है उसका नाम है साधुभक्ति। साधुभक्तिसे सातिशय पुण्यका बंध होता है।

ज्ञानभक्तिका शुभ उपयोग—एक ज्ञानभक्ति है। भेदविज्ञानकी महिमा चित्तमें समाना—अहो धन्य हो, जयवंत हो यह भेदविज्ञान, जिस भेदविज्ञानके प्रसादसे इस जीवको शिवपथ नजर आता है। हमें शान्ति किस प्रकार मिलेगी उसका साक्षात् अनुभव हो जाता है। भेदविज्ञानका परम उपकार है। संसारके कठिनसे कठिन संकटोंमें लगे हुए विपन्न इस प्राणीको संसारसे उद्धार करने वाला यह भेदविज्ञान ही है। जो भी आत्मा सिद्ध हुए हैं, परमात्मा हुए हैं वे इस भेदविज्ञानसे ही हुए हैं। जो आज तक संसारमें बँध रहे हैं वे सब भेदविज्ञानके अभावसे ही बँधे पड़े हैं। अहो! जयवन्त हो भेदविज्ञान। सब जीवोंके उपयोगमें समावो हे भेदविज्ञान। इस जीवका वास्तविक शरण यह भेदविज्ञान है। अन्य पदार्थ जो स्वरूपसे ही अलग हैं, भिन्न हैं उनकी अपनायत, उनकी दृष्टि इस जीवके अहितरूप है। यों भेदविज्ञानके गुण चमत्कार विचार-विचारकर इस भेदविज्ञानका जयवाद करना, सो ज्ञानभक्ति है। फिर जो आगे चलकर जिससे हम अपनेको हटा रहे थे उसका भी विकल्प छोड़कर एक निज शुद्ध अंतःस्वरूपमें अभेदरूपसे मग्न होना यही है अद्वैतज्ञान। इस ज्ञानके अनुभवके बाद विकल्प अवस्थामें आनेपर इस ही अभेदज्ञानका जयवाद करना, मरण करना, उसमें रुचि जगाना सो है ज्ञानभक्ति। यों परमपावन पदार्थ और अभेदकी भक्तिसे सम्पन्न हुआ जीव सातिशय पुण्यका बंध करता है। इस सम्बंधमें इस जीवके शुद्धोपयोगका लक्ष्य है, लेकिन कुछ राग जीवित है, इस कारण वह उपयोग शुभोपयोगपनेको नहीं छोड़ रहा है।

शुभोपयोगकी लक्षणाओंसे शिक्षण—शुभोपयोग होनेके कारण यह जीव सातिशय पुण्यका बंध करता है। इस कथनसे शिक्षा यह लेनी है कि जब ऐसे पावन पदार्थकी ओर उत्पन्न हुए रागकी कणिका भी एक बन्धनका कारण बन गयी तो हमारा अब यह निर्णय है कि समस्त परतत्त्वोंमें अथवा सर्वत्र रागका लेश भी दूर करना चाहिए। क्योंकि रागभाव किसी न किसी अंशमें परसमयकी परिणति करानेका कारण होता है। रागभाव मोक्षका मार्ग नहीं है, फिर भी इतना तो मानना ही होगा कि जब यह जीव राग करनेकी योग्यतामें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org
है तो इस रागको यदि इस परमपावन पदार्थमें न जुटाया जाय, यह राग यदि किन्हीं विषयोंकी ओर लग जाय तब तो वहाँ बहुत अहित है। इस दृष्टिसे यह सब शुभोपयोग उपादेय है और इसमें हम आप परिणति भी कर रहे हैं, फिर भी हम आप सबका लक्ष्य चिन्तन भावना इस निर्लेप, शुद्धस्वरूपकी ओर होना चाहिए।

मनका विशुद्ध उपयोग—भैया ! यह मन खाली नहीं बैठ सकता। कुछ न कुछ इसे करनेको चाहिए। जब तक मनका बल चल रहा है, जब तक ज्ञान ज्ञानमें प्रतिबिम्बित नहीं हुआ है, अर्थात् निर्विकल्प समाधिभाव प्रकट नहीं हुआ है तब तक इस मनका तो निरन्तर काम चल रहा है ना। तो ऐसी स्थितिमें हम एक ही उपाय यह कर लें कि इस मनको इन शुभ शुद्ध पदार्थोंकी ओर लगा दें तो ये अशुभोपयोग विषय कषाय दुर्ध्यान—ये सब दूर हो जायेंगे। इस जीवके वास्तविक बैरी विषय और कषाय हैं। किसी भी दूसरे जीवको अपना विरोधी मान लेना युक्त नहीं है। वह अपने विषयसाधनोंके लगावसे आज विषय साधनोंके लगाव रखने वाले मुझको यह टेढ़ा जंच रहा है लेकिन जिस बुनियादपर यह बैरी जंच रहा है, किन्तु उसकी बुनियाद भी क्षोभ है और मेरी बुनियाद भी क्षोभ है। इसी कारण जो आज व्यवहारमें विरोधी बन रहा है वह थोड़े ही समय बाद व्यवहारमें हमारा परममित्र बन सकेगा और ऐसा होता भी रहता है बाहरमें। कोई भी जीव मेरा विरोधी नहीं है। मेरा विरोधी मेरे विषय कषायोंका परिणाम है। इसे दूर करें, फिर जगतमें कोई भी जीव मेरा विरोधी न रहेगा।

विषयकषायोंको दूर करनेका कर्तव्य—विषय और कषाय परिणामोंको दूर करनेके लिए हम तब तक समर्थ नहीं हो सकते हैं सही मायनेमें जब तक विषयरहित और कषायरहित निज शुद्ध चैतन्यस्वरूपका परिचय न पा लें। एक उपयोगमें दो बातें एक साथ नहीं बनती हैं कि विषयोंका उपभोग भी करते रहें और धर्मका पालन भी करते रहें। जैसे एक सूई आगे और पीछे दोनों तरफ एक साथ सी नहीं सकती, एक पुरुष पूर्व और पश्चिममें दोनों दिशावोंमें एक साथ एक ही समयमें गमन नहीं कर सकता, इसी प्रकार समझिये कि एक उपयोगमें विषयोंका उपभोग और धर्मका पालन—ये दोनों नहीं बन सकते हैं, इस कारण यह निर्णय करिये कि इन दोनोंमें हेय क्या है, उपादेय क्या है, मेरा हितरूप क्या है, मेरा अहितरूप क्या है, ऐसा निर्णय बनाकर जो हितरूप हो उसमें उपयोग लगाइयेगा।

विषय कषायोंको दूर करनेका यत्न—निर्विषय, निष्कषाय शुद्ध ज्ञायकस्वरूप ही हमारा हितकारी है, वही तो मैं हूं, हितमय ही तो मैं हूं, ऐसी अपने अंतस्तत्त्वकी ओर भक्ति जगे वह तो है शरण और शेष किसीसे भी प्रार्थना करें, आशा करें, मेरे विषयोंके साधन बनें इसी लिए तो लोग दूसरोंसे आशा रखते हैं, इन विचारोंमें इस जीवको शान्ति और सन्तोष
Version 1

कभी प्राप्त नहीं हो सकता है। अपने विचार शुद्ध बनायें, भावना शुद्ध रक्खें, विवेक हमारा सही रहे तो समझिये कि हम बड़े स्वस्थ हैं, सावधान हैं, विवेकशील हैं और यह बात न आ सकी, मोह ममतामें ही रहे तो हमने कुछ भी विवेकका काम नहीं किया। अपना सत्यस्वरूप जानें और यह निर्णय करें कि परतत्त्वोंकी ओर लगावका होना ही हमारे लिए विपदा है, इस कारण सर्वप्रयत्न करके शब्दरहित निर्लेप निज चैतन्यस्वरूपकी ओर ही झुकते रहें तो इसमें ही हमें शान्तिका मार्ग प्राप्त हो सकता है।

जस्स हिदयेणुमत्तं वा परदव्वम्हि विज्जदे रागो।
सो ण विजाणदि समयं सगस्स सव्वागमधरोवि ॥१६७॥

रागमें ज्ञानकी अवरोधकता—जिस पुरुषके हृदयमें, परद्रव्योंके सम्बन्धमें अणुमात्र भी राग है वह आत्माको नहीं जानता है। चाहे वह समस्त आगमका भी ज्ञाता हो, समस्त सिद्धान्तरूपी समुद्रके पार भी पहुंचा हुआ हो फिर भी जिसके हृदयमें रागकी रेणुकी कणिका भी अर्थात् रागकी धूलीकण रंच भी जीवित हो रहा हो वह पुरुष रागद्वेषरहित शुद्ध चैतन्य-स्वरूप मात्र स्वसमयको ही जानता है। तब स्वसमयकी सिद्धिके लिए क्या उपाय करना चाहिए? उपाय यही होना चाहिए कि अरहंत सिद्ध मुनि आदिकके विषयमें भी क्रम क्रमसे रागरेणुको दूर करना चाहिए।

रागनिवारणपद्धति—जैसे रुई धुनने वाला जो एक पींजना होता है तो उससे रुई धीरे धीरे धुन-धुनकर उसको पूरा धुन दिया जाता है। रुई धुनने वाले लोग जैसे ५ सेर रुई धुनना है तो ५ सेर रुई इकट्ठी ही रखकर उसमें पीजना नहीं लगाते, किन्तु थोड़ा-थोड़ा उस पींजनासे धुन धुनकर उसे धुन दिया जाता है। एक बार गुरु जी सुनाते थे कि हम एक रजाई लेकर गये धुनियाके पास, एक दूसरा आदमी भी गया। आमने सामने दो धुनिया रहते थे। हमने एक धुनियाको रजाई दिया और दूसरेने दूसरे धुनियाको दिया। दो दो सेर रुई भरानी थी। तो हमारा धुनिया आधी-आधी छटांक रुई लेकर धुने और दूसरेका धुनिया सीधा दोनों सेर रुई लेकर धुने। तो हमने कहा कि तुम तो देर कर रहे हो, थोड़ी-थोड़ी लेकर धुनते हो, देखो वह दूसरा धुनिया इकट्ठी सारी रुई रखकर धुन रहा है। तो वह धुनिया बोला कि तुम्हें इसका तजुर्बा नहीं है। तुम तो देखते रहो, उससे पहिले और उससे बढ़िया हमारी रुई धुन जायगी। आखिर ऐसा ही हुआ। तो जैसे रुई धुननेका तरीका थोड़ी थोड़ी क्रमसे धुननेका है, इसी प्रकार अरहंतादिक भगवन्तोंके प्रति जो रागरेणु उठ रही है उसके दूर करनेका तरीका धीरे-धीरे क्रमसे है।

अशुभ रागसे हटकर शुभ रागसे हटनेका उपदेश—कहीं शुभोपयोगकी बन्धहेतुताका प्रकरण सुनकर कोई ऐसा न कर बैठे कि इसमें तो यह लिखा है कि भगवानकी भक्ति बन्ध

http://www.jainkosh.org
का कारण है, इसे हटावो। प्रभुभक्ति और साधुसेवा आदिक ये सब बंधके कारण हैं और लिखा है कि इन्हें दूर करना चाहिए, पर यह भी तो मर्म समझना चाहिए कि इसके दूर करनेका तरीका कैसा होना चाहिए ? क्रम क्रमसे दूर करें। जैसे एक बहुत तेज प्रवाहको यों ही उसका बिना मार्ग बनाये या बिना क्रम बनाये रोके तो वह बाँध तो फट जायगा। ऐसे ही इस प्रभुभक्तिके रागको अभीसे बिल्कुल दूर करें तो इसका अर्थ यही है कि अन्य रागोंमें फिर लगे वह। इस तरह रुई धुननेके तरीकेकी तरह अरहंत आदिकके विषयमें भी रागरेणु दूर करना चाहिए।

रागकी बंधहेतुता—यह राग निरुपराग परमात्मतत्त्वके विरुद्ध भाव है और निरुपराग परमतत्त्व विकारके विरुद्ध भाव है। राग स्वस्वरूपको नहीं जानने देता अथवा अनुभव नहीं करने देता, इस कारण विषयोंका राग तो पहिले त्याग करना ही चाहिए। उसके पश्चात् जैसे जैसे गुणस्थानोंमें ऊपर चढ़ते जाते हैं उस क्रमसे रागरहित निज शुद्ध आत्मतत्त्वमें ठहरकर विशुद्ध विश्राम मिलता है तब अरहंतादिकके विषयमें भी राग त्याज्य हो जाता है। यहाँ यह सब बातें इसलिए कही जा रही हैं कि हम आप सबके निर्णयमें यथार्थ बात तो रहना ही चाहिए। विषयानुराग और शुभानुराग। विषयानुरागका तो इनमें प्रथम ही त्याग होना चाहिए—पर शुभानुराग भी क्रम क्रमसे दूर करें और एक अपना शुद्ध परिणमन बनाएँ। इस गाथामें इस बातका समर्थन किया है कि जब स्वसमयकी उपलब्धि नहीं है तब वह राग भी बन्धका हेतु बन जाता है।

आगमका बोझ—इस गाथामें समस्त आगमका धारण करने वाला भी होकर राग-रेणुवश स्वसमयका जाननहार नहीं होता, यह बताया है। इस सम्बंधमें एक आशंका की जा सकती है कि जो समस्त आगमका ज्ञाता होगा वह तो श्रुतकेवली है और श्रुतकेवली नियमसे सम्यग्दृष्टि होता है, फिर इस गाथाका अर्थ कैसे ठीक बैठेगा ? समस्त आगमका धारण करने वाला होकर भी परद्रव्योंमें अणुमात्र भी राग होनेपर स्वसमयका जाननहार नहीं कहा है, यह कैसे ठीक बैठेगा ? इसका समाधान सुनिये—प्रथम तो स्वसमयका जानन पूर्णरूपसे जान लिया जाय तो उसका अनुभव करना अर्थ कर दीजिए। तब आगमका भी कोई ज्ञाता हुआ, सम्यग्दृष्टि हुआ, श्रुतकेवली हुआ, किन्तु उसका भी परिस्थितिवश किसी मुनिमें शास्त्रादिकमें कहीं उपयोगसे राग पहुंच रहा हो तो उस कालमें वह स्वयंका अनुभव नहीं कर रहा, प्रथम तो यह बात समझिये। दूसरी बात यह जानो कि यहाँ कहा है सर्व आगमका धारण करने वाला। तो धारण शब्द एक बोझको सिद्ध करता है। समस्त आगमका बोध लादने वाला भी यदि परद्रव्यमें अणुमात्र राग करता है तो वह स्वसमयको नहीं जानता है। इस आगममें बोझके रूपमें धारण करनेकी बात कहनेसे स्वयं ही यह सिद्ध हो गया कि वह आगम इतना
Version 1

ले लीजिये कि जितना सम्यक्त्व हुए बिना भी अधिकसे अधिक ज्ञात किया जा सकता है। जैसे ११ अंग और ९ पूर्वकी प्रसिद्धि तो है हो। इस आगमका जाननहार होकर भी वह सम्यग्दृष्टि न भी हो, मिथ्यादृष्टिके भी इतना ज्ञान हो सकता है और मिथ्यादृष्टिमें ही क्या, अभव्य जीवके भी उतना ज्ञान हो सकता है।

निरुपराग आत्मतत्त्वकी भावना—इस गाथाका भाव यह है कि परसमयके विषयमें रंचमात्र भी राग हो तो वह भी बन्धनरूप है। वह राग भी त्याज्य है। इस तरह निरुपराग शुद्ध आत्मस्वरूपकी ओर प्रवृत्ति करनेका उत्साह देनेके लिए शिक्षा दी गई है कि प्रशस्त राग विकल्प त्यागकर निरुपराग निज शुद्ध समयसारका अनुभव करना चाहिए।

धरिदुं जस्स ण सक्कं चित्तुब्भामं विणा दु अप्पाणं।
रोधो तस्स ण विज्जदि सुहासुहकदस्स कम्मस्स ॥१६८॥

क्षोभनिरोधके बिना संवरका अभाव—जिस पुरुषके चित्तका संकल्प, चित्तका उद्भ्रम भ्रामकत्व आत्माके बिना अर्थात् निज शुद्ध आत्माकी भावनाके बिना रोका नहीं जा सकता है उसके शुभ और अशुभ किए हुए कर्मोंका सम्वर कैसे होगा? थोड़ा भी राग हो तो वह दोष परम्पराका कारण हो जाता है, ऐसी बात कही है। जैसे किसीसे थोड़ा भी मन न मिलता हो तो आज तो जरासा ही मन न मिलनेकी बात है, किन्तु वह ऐसा संकल्प-विकल्प और भ्रम उत्पन्न करता रहेगा कि थोड़े ही कालमें वह विरोधका विराट रूप रख लेगा, ऐसे ही यह राग जिसे कि लोकव्यवहारमें राजनीतिमें कहते हैं कि दुश्मनका कोई लेश भी रह जाय तो वह आगामी कालमें विघातका कारण होगा, ऐसे ही यह राग इस आत्माका महा शत्रु है। यह राग थोड़ा भी रह जाय तो यह कुछ काल बाद विराट रूप रख लेता है।

सूक्ष्म रागमें भी संसरणहेतुता—नवग्रैवेयकोंमें सभी अहमिन्द्र होते हैं अर्थात् वहाँ इन्द्रादिक १० भाँतिकी कल्पनाएँ नहीं हैं। उनके शुक्ललेश्या मानी है। अब समझ लीजिए कि शुक्ल लेश्याके लक्षण कितने ऊँचे हैं? पक्षपात न करें, इष्ट राग न करें, अनिष्टमें द्वेष न करें, समतापरिणाम रखें, इतना उत्कृष्ट परिणाम हो गया, परन्तु मंदराग अभी छिपा हुआ है। कोई कोई लोग तो उस नवग्रैवेयकको ही मोक्ष मानते हैं। जैसी वहाँकी स्थिति होती है उस ही स्थितिको बैकुण्ठका रूप देते हैं, चिरकाल तक वे मुक्त रहते हैं, परम आत्मा रहते हैं, सब झंझटोंसे छुट्टी रहती है और कल्पकाल बाद या कोई समय जो कि असंख्यातों वर्षका है उतने वर्ष व्यतीत होनेके बाद उनको वहाँसे च्युत होना पड़ता है और संसारमें जन्म लेना पड़ता है। यही बात तो उनके सम्बन्धमें है। वे ३१ सागरपर्यन्त जिसमें कि असंख्याते वर्ष समाये हुए हैं वे रहते हैं। उनके राग कम है, बड़े सुखसे हैं, अहमिन्द्र कहलाते हैं, और अन्तमें अपनी आयु पूर्ण करनेपर। इस भूलोकमें जन्म लेना पड़ता है। तो देखो वह अल्प राग रहा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो राग रहा ना ? वह एक बहुत बड़े रागका कारण बन गया ।

प्रभुभक्तिमें भी रागकी अनुवृत्ति—अरहंत आदिकके सम्बंधमें भी जो भक्ति है वह भक्ति भी रागकी अनुवृत्ति किए बिना नहीं होती अर्थात् शुद्ध वीतरागताके परिणाममें अर्हद्-भक्ति नहीं होती, और इसी कारण भक्तिका प्रधान कर्तव्य श्रावकोंको बताया गया है । यद्यपि साधु भी प्रभुभक्ति करते हैं, पर साधुजनोंके लिए मुख्यता निर्विकल्प समाधिके यत्नका उप-देश है और उसमें जब वे नहीं ठहर पाते हैं तो वे अर्हद्भक्ति आदि भी करते हैं । अर्हद्भक्ति की मुख्यता साधुजनोंको न बताकर श्रावकोंको बतायी है और ऐसे ही दानकी मुख्यता साधुवों को न बताकर गृहस्थोंको बतायी है ।

अर्हद्भक्ति आदिमें ज्ञानीका आशय—अध्यात्मग्रन्थोंके प्रणेता श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने भी रयणसार ग्रन्थमें श्रावकोंका मुख्य धर्म दान और पूजा कहा है और साधुवोंका मुख्य धर्म सामायिक चारित्र निर्विकल्पसमाधि विशुद्ध समताका परिणाम कहा है । इसके मायने यह नहीं हैं कि गृहस्थ केवल भक्ति, पूजा, दान ही करते रहें और वह निरुपराग आत्मतत्त्वकी दृष्टिसे दूर रहें, यह अर्थ नहीं है, पर निरुपराग शुद्ध आत्मतत्त्वकी दृष्टि इन श्रावकोंके गौणरूप से रहती है और दान, पूजाकी बात श्रावकोंमें मुख्यरूपसे रहती है, और साधु जनोंमें निरुप-राग शुद्ध आत्मतत्त्वकी साधनाका कार्य मुख्यरूपसे रहता है और उपदेश देना यही उनका दान हो जाता है । तो ये ज्ञानदान आदिकके कार्य और अर्हद्भक्ति आदिकके कार्य उनके गौणरूपसे चलते हैं । इसका अर्थ यह हुआ कि श्रावक है मुख्यतासे सराग सम्यग्दृष्टि । तो अब श्रावकको ऐसी स्थितिमें जब कि राग करनेके अनेक विषय सामने पड़े हैं—दूकान, घर, व्यवहार जब इतने रागके साधन पड़े हैं तो ऐसी स्थितिमें यह श्रावक अपने रागका अधिकाधिक प्रयोग अर्हद्-भक्ति आदिक रूपमें करे ।

रागकी अनुवृत्तिमें ज्ञानप्रसारका अभाव—अर्हद्भक्ति रागकी अनुवृत्ति किए बिना नहीं होती और रागकी अनुवृत्ति होनेपर बुद्धिका विस्तार नहीं बनता या कुबुद्धिका विस्तार बनता है, ज्ञानका विस्तार नहीं बनता । रागका स्वभाव ही ऐसा है कि राग रहे किसी ओर तो ज्ञान का प्रसार नहीं बनता । जिस विषयमें राग रहता है तो इसका तो अंदाज किया ही होगा, ज्ञानका विशुद्ध प्रसार नहीं हो पाता । यहाँ है शुद्ध परमात्मप्रभुमें राग । इस कारण विषयोंके रागकी तरह बुद्धिप्रसारको तो यह न रोकेगा, किन्तु राग है और राग होनेके कारण उपयोग किसी एक विषयमें रुका हुआ है, ऐसी स्थितिमें वहां बुद्धिका प्रसार नहीं हो सकता अर्थात् केवलज्ञानादिक जैसे मनःपर्ययज्ञान आदिक जैसे विशुद्ध ज्ञान प्रकट नहीं हो सकते । एक बात । दूसरी बात यह है कि बुद्धिका अर्थ यहाँ विशुद्ध ज्ञान न समझें, किन्तु रागमिश्रित जो कल्प-नाएँ होती हैं उसका नाम है बुद्धि । और जो ज्ञानका विशुद्ध फैलाव है उसका नाम है ज्ञान ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो जिस विषयमें राग किया जा रहा है उस विषयमें बुद्धि फैल गयी, अर्थात् बुद्धि लग गयी, बुद्धि न लगे तो रागभाव नहीं हो सकता। तो इस प्रकारकी बुद्धि लगनेपर शुभ और अशुभ कर्मका निरोध न होगा। इस कारण एक ही अपने चित्तमें कर्तव्यका निर्णय करें कि राग कलुषता विलासका कारण जो अध्यवसान परिणाम है वह अनर्थ परम्परावोंका मूल कारण है।

प्रतिपद विवेक—यहां निर्णयकी बात चल रही है। निर्णयके समक्ष लोकव्यवहारकी भी चिन्ता नहीं की जाती। अर्हद्भक्ति, दान, पूजा आदिक कर्तव्योंको ही यहाँ कहा जा रहा है कि ये हटाना चाहिए। यह एक वस्तुस्वरूपका निर्णय है। कर्तव्यकी बात तो जो जिस पदवी में है उस पदवीमें रहकर उस कर्तव्यको निभाता है। जैसे गृहस्थ पदवीमें रहने वाले अविरत-जनोंसे कोई साधु यह उपदेश करे कि तुम लोगोंका काम तो यह है कि पूर्ण रूपसे अहिंसा धारण करो, कोई मारे-पीटे तो पिट लो, कोई धन छीने तो छीन लेने दो, तुम ऐसा काम न करो जिससे दूसरेको कष्ट हो, ऐसा कोई साधु गृहस्थोंको उपदेश दे तो क्या गृहस्थ इस बातको निभा सकेंगे ? अरे नहीं निभा सकते। तब उनके कर्तव्यका विधान स्पष्ट बताया है।

अहिंसकताका विकास—आर्ष ग्रन्थोंमें चार प्रकारकी हिंसायें बताकर यह दिखाया है कि गृहस्थ संकल्पी हिंसाका तो पूर्ण त्यागी होता ही है। यदि वह विवेकी है, ज्ञानी है तो वह अपने इरादेसे किसी भी जीवका अकल्याण नहीं चाहता। लेकिन आरम्भके प्रसंगोंमें, उद्यमोंके प्रसंगोंमें अथवा किसी शत्रु द्वारा आक्रमण हुआ हो तो वहाँपर जो हिंसायें हो जाती हैं उन हिंसाओंका त्यागी यह अविरत गृहस्थ नहीं है। फिर संयमासंयमके बीचमें जैसे-जैसे उसकी प्रतिमा बढ़ती रहती है, प्रतिज्ञा बढ़ती रहती है, आशय विरक्तिकी ओर जाता है तैसे-तैसे उन तीन प्रकारकी हिंसावोंमें भी उसका त्याग बढ़ता जाता है और संयत हो जानेपर तो सर्वप्रकारकी हिंसावोंका सर्वथा त्याग हो जाता है। अब रह गया यह कि वे साधु श्वास तो लेते हैं और श्वास लेनेपर भी जीव मरते हैं तो जो इस तन, मन, वचनके अनुकूल किया ही न जा सकता हो ऐसी स्थिति अशक्यानुष्ठानमें कहलाती है और आशय रंच भी किसीके घात का न होनेसे वहाँ वह अहिंसक ही कहलाता है।

हिंसाका दोष—तो जैसे पदवियोंके अनुसार कर्तव्यका विभिन्न-विभिन्न वर्णन है, पर विभिन्न वर्णन होते हुए भी सम्यग्दृष्टि गृहस्थ है यदि, तो अपने निर्णयमें तो वह साधुकी तरह ही वस्तुस्वरूप लिए हुए है कि भले ही गृहस्थ उन तीन हिंसावोंका त्यागी नहीं है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि गृहस्थको उन तीन हिंसावोंका दोष नहीं लगता। जो भाव, जो कर्म जिस प्रकारके निमित्तनैमित्तिक भावको लिए हुए होते हैं वहाँ फेर नहीं पड़ सकता। कर्मोंकि यह ज्ञान नहीं है, कर्म जड़ हैं। वे यह न सोच सकेंगे कि यह ज्ञानी गृहस्थ सम्यग्दृष्टि घरमें रह रहा है अथवा अन्य कोई गृहस्थ सम्यग्दृष्टि ही न सही, घरमें रह रहा है और इसका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कर्तव्य हिंसावोंके त्यागका बताया है और यह तीन हिंसावोंको कर रहा है तो इसको हम न बाँधें। आगममें लिखा है ना। तो वहाँ यह बात नहीं है। वहाँ तो निमित्तनैमित्तिक भावों की जो विधि है उस विधिके अनुसार बन्धन होगा ही।

विरति व अविरतिकी स्थितिमें हुई हिंसाका दोष—हाँ यह बात बतायी है आगममें कि गृहस्थ तीन हिंसाओंका त्यागी नहीं है अर्थात् चार प्रकारकी हिंसाओंका त्यागी साधु संत-पुरुष यदि उनमें किसी प्रकारकी हिंसा करे तो उसके महादोष है, त्याग किए हुएको उसने पकड़ा और यह प्रवृत्ति उसमें कषायोंकी तीव्रता जगे बिना नहीं हुई। जैसे गृहस्थ एक साधारणरूपसे रसोई बनाता है, खा लेता है और कोई मुनि किसी समय बड़ी ही शुद्ध विधिसे कोई थोड़ी-सी रसोई बना ले और खा ले तो अंदाज करो कि साधुको कितनी तेज कषाय करनी पड़ी होगी अन्तरमें तब वह ऐसी प्रवृत्ति कर सका। जो पुरुष जिस नियमपर रहता है उस नियमसे च्युत होनेके लिए कषाय तीव्र करना होता है, तब वह महादोष है। इस प्रकार का दोष तीन प्रकारकी हिंसामें रहने वाले गृहस्थको नहीं लगा।

यथार्थ श्रद्धा व स्वरूपाचरणयत्न—भैया! तो जैसे कर्तव्यपथमें पदवियोंके अनुसार अलग-अलग विधान बताया है तिसपर भी स्वरूप यथार्थ सभीको समझना पड़ता है। इसी तरह गृहस्थ हो अथवा प्रमत्तविरत साधु हो, कर्तव्यके पथमें अपनी परिस्थितिके अनुसार अर्हद्भक्ति आदिक रागमें लग रहा है वह फिर भी स्वयं निर्णयके मार्गसे उसका अंतःकरण निरुपराग शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना करनेके लिए ही बना रहता है। इस प्रकार इस गाथामें यह शिक्षा दी है कि रागका लेश भी हो तो वह दोष परम्पराको बढ़ाने वाला होता है। अतः कोशिश यही करें, श्रद्धामें यही बात लायें कि मुझमें रागका लवलेश भी उत्पन्न न हो और उस रागद्वेष रहित शुद्ध निर्विकल्प अन्तस्तत्त्वमें रमकर सर्वसंकटोंसे मुक्त होनेका एक सच्चा मार्ग प्राप्त करें।

तम्हा णिव्वुदिकामो णिस्संगो णिम्ममो य हविय पुणो।
सिद्धेसु कुणदि भत्तिं णिव्वाणं तेण पप्पोदि॥१६६॥

निर्वाणयात्रामें निःसङ्गता—चूंकि रागादिककी अनुवृत्ति होने पर चित्तमें उद्भ्रम उत्पन्न होता है, डांवाडोलपना चित्तका रहता है अथवा बुद्धि भ्रान्त रहा करती है और उस बुद्धिकी भ्रान्ति होनेपर कर्मबन्ध होता है। इस कारण मोक्ष चाहने वाले पुरुषोंको निःशंक होकर, निर्मम रहकर सिद्ध प्रभुकी भक्ति करना चाहिए, इससे निर्वाणकी प्राप्ति होती है। प्रत्येक पदार्थ निःसंग है तभी पदार्थोंका अस्तित्व रहता है। अपने स्वरूपसे ही रहना, परके स्वरूपसे न रहना, परके द्रव्यगुण पर्यायोंसे विविक्त रहना यही निःसंगता है। यह आत्मा भी अपने ही सत्त्वसे है। समस्त परपदार्थ उन द्रव्य गुण पर्यायोंसे विविक्त हैं, इस कारण आत्मा

Version 1

भी निःसंग है। ऐसे निःसंग आत्मतत्त्वकी जब यह जीव सुध नहीं रखता तो कल्पनामें यह परिग्रही बन जाता है, बाह्य परिग्रहोंसे परिग्रही कोई होता ही नहीं है। किसी-किसी जीवके बाह्य परिग्रह लगे हैं तो भी स्वरूपमें तो निष्परिग्रही यह आत्मा है ही। केवल अन्तरंग परिग्रह जो आत्माका जोड़ रक्खा है, कल्पनाएँ, विकल्प, मूर्छा इन अन्तरङ्ग परिग्रहोंके दूर होनेसे यह आत्मा निष्परिग्रही कहलाता है। निःसंग आत्मतत्त्वसे विपरीत बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहोंसे रहित होनेके कारण जीव निःसंग हो जाता है। जिसे निर्वृत्तिकी इच्छा है उसे निःसंग होना चाहिए।

निर्वाणयात्रामें निर्ममता—जो मुक्ति चाहता है, सर्व झंझटोंसे बन्धनसे छुटकारा चाहता है उसका कर्तव्य है कि पहिले यह स्वीकार करे कि मैं इन सब बन्धनोंसे रहित स्वरूप वाला हूं और फिर यथाशक्ति ऐसी अपनी वृत्ति रखें जिसमें बाह्यपरिग्रहोंका सम्बन्ध न रहे। मोक्ष चाहने वाले पुरुषोंको निर्मम होना चाहिए। लोकव्यवहारमें निर्मम होनेको गाली समझते हैं। यह पुरुष बड़ा निर्मम है, लेकिन ममता तो जीवका विकार भाव है। लोग तो चाहते हैं कि हमपर दूसरोंकी ममता जगे, हमारी लोग सेवा करें, पालन पोषण करें, इस कारणसे ममताका आदर रखते हैं, पर मोक्षके प्रसंगमें इन ममतावोंसे तो जीवकी हानि है, अतएव ममताका लवलेश भी न रहे ऐसी जो निर्ममता है, ममकाररहित परिणाम है ऐसे परिणामोंमें रहकर मुक्तिकी प्राप्तिका उपाय बनाना है।

चैतन्यशक्तिकी उपासनासे सिद्धि—यह मैं आत्मा चैतन्यप्रकाशरूप हूं, जिसमें रागादिक उपाधियोंका सम्बन्ध नहीं है, ऐसे आत्मतत्त्वसे विरुद्ध है यह मोहविकार। उस मोहके उदयसे ममकार आदिक विकल्पजाल उत्पन्न होते हैं, उन विकल्पजालोंसे जो रहित बन जाय उसका नाम है निर्मम अथवा निर्मोह कहो। तो मुक्ति चाहने वाला पुरुष निःसंग होकर, निर्मोह होकर सिद्धमें भक्ति करे। जो आत्मा अपने आप सहज सिद्ध है, शाश्वत है ऐसा जो चैतन्यस्वभाव उस ही भाँति कल्पनाएँ करके देखी गयी जो शक्तियाँ हैं उन शक्तियोंकी भक्ति करें।

लोकमें शक्तिकी उपासना—कुछ सम्प्रदाय शक्तिकी भक्ति करते हैं। जैसे दुर्गादेवीके भक्त जितने लोग होते हैं उनमें कुछ तो मुद्राकी भक्ति करते हैं। जो दुर्गाकी मुद्रा बनायी जिस प्रकार भी उस रूपको देखकर उपासना करते हैं और कुछ लोग मुद्राकी उपासना नहीं करते, किन्तु एक जो शक्ति है संहारशक्ति अथवा पालनशक्ति, जो भी उन्होंने कल्पनामें समझा है उस शक्तिकी उपासना करते हैं, ठीक है, शक्तिकी उपासना करने वाले दुर्गाका सही स्वरूप समझें और उसकी शक्तिका सही स्वरूप समझें, फिर उपासना करें तो उन्हें भी रास्ता मिल सकता है।

http://www.jainkosh.org

दुर्लभ विभूति और उसकी शक्ति—दुर्गा नाम किसका है। दुःखेन गम्यते या सा दुर्गा, जो बड़ी मुश्किलसे प्राप्त की जा सके उसका नाम दुर्गा है। जरा निगाह डालकर तो देखो यह आत्मा प्राप्त क्या किया करता है? धन प्राप्त कर नहीं सकता, अन्य जीवोंको पा नहीं सकता, क्योंकि यह मैं आत्मा रूप, रस, गंध, स्पर्शसे रहित अमूर्त तत्त्व हूं, इसमें तो इसकी परिणतियाँ जगती हैं और उन्हीं परिणतियोंके होनेका नाम प्राप्त करना है। मैं क्या प्राप्त कर सकता हूं? अपने आपमें अपने ही परिणमनमें प्राप्त कर सकता हूं। तो अब सर्वपरिणमनोंमें से ऐसे परिणमनको खोजो जो परिणमन बड़ी कठिनाईसे मिलता है। विषयकषायों के परिणमन अनादिकालसे जीवके साथ चले आ रहे हैं, ये बड़े आसान लग रहे हैं। प्रत्येक जीव संसारके विषय और कषायमें मग्न हैं। वे परिणतियाँ तो दुर्गा नहीं हैं, केवल एक निर्विकार शुद्ध अंतस्तत्त्वकी अनुभूति यह बड़ी कठिनाईसे मिलती है। देखो ना जहाँ आँख उठाकर देखो। जितने लोग दिखते हैं, जितने पशु पक्षी दिखते हैं सबकी परिणतियाँ विषयोंमें कषायोंमें बड़ी आसानीसे लग रही हैं। केवल एक अपने आपकी ऐसी अनुभूति जहाँ कोई विकल्प नहीं है, केवल चैतन्यप्रकाशका अनुभव है ऐसा शुद्ध अंतस्तत्त्वका अनुभव ही वास्तवमें दुर्गा है जो बड़ी मुश्किलसे प्राप्त होता है, उस अनुभूतिकी शक्तिरूपमें उपासना करिये।

उपासनाओंका मूल प्रयोजन—वह अनुभूति किस आधारसे हुई है, किसका आलम्बन लेकर करना है, ऐसी शाश्वत जो चिर शक्ति है उस शक्तिको एक भेदरूपमें विस्तृत करें तो शाश्वत सहज ज्ञान, सहजदर्शन, सहजगुण आदिक अनेक सहज गुण विदित होते हैं। उन गुणोंमें भक्ति करें तो मुक्ति प्राप्त हो सकती है। कोई समय था जब लोगोंमें धर्मका वातावरण विशेष था और उस धार्मिक वातावरणमें धर्मका प्रतिपादन कभी अलंकारिक रूपमें भी चला करता था। तो उस समयके जो अलंकारिक शब्द हैं, जिनकी उपासनाके लिए धर्ममार्ग में बताया था वे सब आज भिन्न रूपसे देवी देवतावोंके रूप रखने लगे हैं किन्तु समस्त उपासनाओंका प्रयोजन मूलमें इस सहज सिद्ध प्रभुकी उपासनाका ही है। आज जितने भी मजहब, जितने भी धर्म भिन्न-भिन्न रूपोंको लेकर प्रकट हुए हैं उन सबका प्रारम्भमें जब कि एक ही धार्मिक वातावरण था, सबका उद्देश्य कोई एक था, बादमें विचारधारायें और अर्थप्रतिपादनकी प्रक्रियाएँ भिन्न-भिन्न होनेसे मजहबोंके रूप हो गए।

पारमार्थिकी भक्ति—सभी लोग आखिर धर्ममार्गमें तब सन्तोष पाते हैं जब अपने आपकी ओर झुकते हैं और तभी एक परमविश्राम मिलता है। यह सब क्या है? निःसंग होनेका और निर्मम होनेका रूप। जिन्हें मुक्ति चाहिए वे निःसंग हों और निर्मम बनें, शुद्धगुणोंकी तरह जो अनन्त ज्ञानादिक आत्माके गुण हैं उनमें भक्ति करें। वास्तविक भक्ति क्या है? पारमार्थिक जो निज अंतस्तत्त्व है उसका स्वसम्वेदन ही वास्तविक सिद्धभक्ति है। इस

Version 1

सिद्धभक्तिके परिणामसे जो शुद्ध आत्माकी उपलब्धि होती है यही निर्वाण है। इस निर्वाणकी प्राप्तिके लिए सर्वप्रयत्नोंसे रागादिककी अनुवृत्ति समाप्त करनी होगी। रागादिक भाव प्रकट हुए हैं उसके अनुकूल आशय बनाना इसका नाम है रागादिककी अनुवृत्ति। रागादिक भाव प्रकट होते हैं, उस रागादिक भावमें उपयोगका जोड़ना इसका नाम है रागादिकी अनुवृत्ति। इसके अतिरिक्त जो अन्य अबुद्धिपूर्वक राग उत्पन्न होते हैं जिन्हें यह शुद्धोपयोगसे ग्रहण भी नहीं करता है वे सब तो अपने आप ही दूर हो जाते हैं।

रागविनाशके ठौर—रागादिक दूर किये जानेके ये तीन मुख्य ठौर हैं। रागादिकके अनुकूल आशय बनाना यह तो है मिथ्यात्वकी पदवी। अभिप्राय बना बनाकर रागादिक उत्पन्न करना और रागादिक होते हैं उनमें उपयोगका लगाना यह दूसरी पदवीका राग हो सकता है। ऐसी स्थिति मिथ्यात्वमें भी हो सकती है और सम्यक्त्वमें भी हो सकती है अर्थात् आत्मामें रागादिक होते हैं तो उन रागादिकोंकी प्रेरणासे उपयोग स्वकी ओर न रहकर रागादिकोंके साधनोंकी ओर चला जाय, यह बात सम्यग्दर्शनके होनेपर भी किसी हद तक सम्भव हो सकती है और मिथ्यादृष्टियोंके तो यह होती ही रहती है, किन्तु तीसरे दर्जेकी जो रागादिक स्थितियां हैं, वे अविदित रहती हैं। राग हो गया, जिस आत्मामें राग हुआ, न उसको उपयोगने ग्रहण किया, न उसने समझ ही पाया कि हुआ राग। यों अबुद्धिपूर्वक राग होकर वह अपने आप समाप्त हो जाता है।

उपदेश्यता—अबुद्धिपूर्वक रागको दूर करनेके लिए तो उपदेश क्या है, किन्तु जो बुद्धिपूर्वक राग करता है, मिथ्यात्व अवस्थामें विपरीत अभिप्राय रखकर राग करता है उसे त्यागनेका उपदेश हो सकता है, और सम्यक्त्व होनेपर भी आसक्तिके कारण रागादिकमें उपयोग लगता है। जैसे सम्यग्दृष्टि गृहस्थ श्रावक जब दूकान मकान परिजन सर्वप्रकारके प्रसंगोंमें है तो क्या उसका उपयोग कभी इनमें जाता नहीं, हाँ प्रतीति अवश्य विशुद्ध रहा करती है। तो उस समयमें भी जो रागादिक होते हैं उनके भी त्यागका उपदेश किया जाता है और प्रमत्त अवस्थामें साधु जनोंके भी जो रागादिक हुए वे धर्मानुराग हैं, उनके भी परिहारका उपदेश किया जाता है। जिसे मुक्तिकी अभिलाषा है उसे रागादिककी अनुवृत्तिका तो समाप्तिकरण करना ही चाहिए।

स्वसमयरतता—जब ये रागादिक दूर हुए तो आत्मामें पारमार्थिक सिद्धभक्ति उत्पन्न होती है। जो अपने आप सिद्ध है ऐसे निर्मल शुद्ध आत्मद्रव्यमें ही विश्राम पा लेना, विकल्प तरंग न होना, ऐसी अपनी जो अभेद पारमार्थिक सिद्ध भक्ति है उसको धारण करते हुए यह जीव स्वसमय परिणति वाला होता है। यह हुआ स्वसमयरत। जो दर्शन, ज्ञान और चारित्र में स्थित है उसे स्वसमय कहा गया है। जब ऐसे स्वसमयका प्रकाश होता है तो समस्त कर्म-

Report any errors at vikashd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बन्ध दूर होते हैं और अन्यत्वकी सिद्धि, सदाके लिए कर्मजालोंसे मुक्ति इसके प्रकट होती है।

सपयत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सूत्तरोइस्स ।
दूरतरं णिव्वाणं संजमतवसंपओत्तस्स ॥१७०॥

सूक्ष्म परसमयता—इस प्रकरणमें पूर्वकी कुछ गाथाओंमें सूक्ष्म परसमयका व्याख्यान किया है। जैसा कुछ परसमयपना साधुजनोंमें भी पकड़में न आये, ऐसा भी सूक्ष्म होता है। यह तो मोटे परसमयकी बात है कि कोई साधु अपनी मुद्राको निरखकर ऐसा विश्वास रखे कि मैं साधु हूं, मुझे ऐसे-ऐसे व्रत लेना है, मुझे यों चलना चाहिए, यों बैठना चाहिए, और शिष्यजनोंको हमसे इस तरहका व्यवहार करना चाहिए, मैं साधु हूं, मैं मुनि हूं, आचार्य हूं। मुझे सही व्यवस्था रखनी चाहिए। इस प्रकारकी अगर अपने स्वरूपमें श्रद्धान है, अन्तरंगमें विकल्प बने हुए हैं, तो वह तो मोटा परसमयपना है। सूक्ष्म परसमयकी बात तो वहाँ है जहाँ निर्दोष परमात्माकी उपासना की जा रही है, उनके गुणोंमें भक्ति की जा रही है, और वे उस भक्तिमें ही रत और संतुष्ट हो रहे हैं, वहाँ है सूक्ष्म परसमयता। जो बात कहने सुननेमें धर्म की लग रही है और व्यावहारिकतामें धर्मकी बात भी है—प्रभुभक्ति करना, साधुभक्ति करना, गुरुसेवा करना धर्मकी बात भी है, फिर भी इस ओर लगा हुआ उपयोग और इस तरहका उपयोग भी लगा है और अपने आपके शुद्ध अन्तस्तत्त्वकी प्रतीति भी है तो देखो कि धर्मकी बात लग रही है, किन्तु वहाँ हो रहा है परसमयपना। इसमें भी सूक्ष्म परसमयपना यह है कि सम्यक्त्व होनेपर भी शुद्ध प्रतीति होनेपर भी परकी ओर जो जितने काल उपयोग लग रहा है उतने काल यह परसमय है।

परसमयताकी हेयता—यों समझ लीजिए कि परसमयपना मिथ्यादृष्टिके और कभी-कभी सम्यग्दृष्टिके भी जगता है, पर सम्यग्दृष्टिके परसमयपनेका अर्थ केवल इतना है कि यह सम्यग्दृष्टि उस समय अपने आपके आत्माकी अनुभूतिमें न रहकर बाह्यपदार्थोंके परिज्ञानमें और उनकी व्यवस्थामें लग रहा है। मोक्षके प्रसंगमें तो परसमयपना रंच भी नहीं होना चाहिए। इस गाथामें यह बात कह रहे हैं कि संयम और तपमें भी कोई लगा हुआ हो, श्रुतकी, आगम की रुचि भी रखता हो, जीवादिक पदार्थोंके और तीर्थंकरोंके प्रति भी जिनकी बुद्धि लग रही हो, उनमें आदरभाव कर रहा हो ऐसे जीवका भी निर्वाण दूर है।

परसमयताके विश्लेषणसे शिक्षण—इस गाथामें जो अर्थ बताया है, उससे हमें कई बातोंकी शिक्षा मिलती है। साक्षात् तो यह शुभोपयोगरूप प्रवर्तन मोक्षका हेतु नहीं है, इस कारण इसका दूर निर्वाण है। इसका भाव यह है कि यह परम्परा मोक्षका कारण है। जो पुरुष मोक्षमार्गमें उद्यमी हुए हैं और जिन्होंने अचिन्त्य विलक्षण महान संयम और तपश्चरणके भारको भी धारण किया है अर्थात् संयम और तपश्चरणका पालन भी जो खूब

Version 1

करते हैं, किन्तु अपनी प्रभुशक्तिकी, प्रभुभक्तिकी जिन्हें सम्भावना नहीं है, जो परमभूमिकामें चढ़ाने वाली शक्ति है ऐसी शुद्ध शक्तिकी जिनके चित्तमें सम्भावना नहीं जगती है वे पुरुष निर्वाणकी रुचि करते हुए भी अरहंतादिक शुद्ध आत्मतत्त्वकी भक्ति करते हुए भी उस भक्ति को, उस रुचिको छोड़नेके लिए उत्साहित नहीं होते, वे भी साक्षात् मोक्षको प्राप्त नहीं करते। थोड़ेसे शब्दोंमें इसका भाव यों समझिये कि अर्हद्भक्ति अथवा तत्त्वचर्चा आदिक ९ पदार्थोंका श्रद्धान अवगम किए हुए भी चित्तमें यह बात नहीं आती कि यह अर्हद्भक्ति भी एक रागका अंश है और यह रागका अंश भी इस जीवका स्वरूप नहीं है, ऐसी बात चित्तमें न आये तो वह उस रागांशसे दूर होनेके लिए उत्साह नहीं कर सकता है।

शुभ रागके छोड़नेका विधान—भैया! अर्हद्भक्तिके रागसे दूर होनेके बाद यदि अभिन्न सहज सिद्ध चैतन्यस्वभावके सम्वेदनरूप पारमार्थिक भक्ति आती है तो वह तो है शुभ रागके छोड़नेका विधान, और इस प्रकरणको सुनकर अर्हद्भक्तिको छोड़ना आसान समझकर छोड़ दे और सहज स्वभावमें उसकी भक्ति न जगे, स्वसम्वेदन न बने तो वह उस शुभरागके छोड़नेका सही विधान नहीं है। शुभराग छोड़कर अशुभ रागमें नहीं गिरना है, किन्तु शुभ राग छोड़कर शुभ अशुभ दोनोंसे रहित नीरंग निर्मम शुद्ध अन्तस्तत्त्वके सम्वेदनमें आना है और इस ही लक्ष्यसिद्धिके लिए शुभ और अशुभ दोनों प्रकारके रागोंका त्याग कराया जाता है।

शुद्ध अन्तस्तत्त्वमें रतिका उत्साह—जो जीव शुभ रागको छोड़कर शुद्ध सम्वेदन रूप परिणति बनानेके लिए उत्साहित भी नहीं हैं वे पुरुष देवलोक आदिकके क्लेशकी प्राप्तिमें समय गुजारकर परम्परासे भविष्यमें कभी मोक्ष पायेंगे, वर्तमानमें नहीं पाते हैं, उस समय शुभ रागसे होता है पुण्यबंध और पुण्यबंधसे प्राप्त होगा देवलोक। उस देवलोकको भी ज्ञानी जीव क्लेश मानते हैं। क्लेशरहित अवस्था तो निर्विकल्प शुद्ध चैतन्यस्वरूपका अनुभव है, यह जिन्हें प्राप्त होता है वे ही वास्तवमें अमर हैं। उनको फिर कोई आकुलता नहीं रहती है। यहाँ शिक्षा दी है कि जिसे निर्वाण चाहिए वह शुभ अशुभ रागोंसे विविक्त शुद्ध अन्तस्तत्त्वमें रति करे।

स्वरूपप्रतपन—जो साधु बहिरङ्गमें तो इन्द्रियसंयम और प्राणसंयमके बलसे रागादिक उपाधियोंसे रहित निर्विकल्प ज्ञानको अपने शुद्ध आत्मामें संयत करनेका यत्न कर रहे हैं, ये साधु ख्याति, पूजा, लाभ अथवा अनेक मनोरथ विकल्पजालोंकी दाहोंसे जो रहित हैं इसी कारण वे अपने शुद्ध आत्मामें अपने उपयोगका संयम करनेके लिए स्थितिकरण कर रहे हैं, संयमी हैं, शुद्ध हैं, सम्यग्दृष्टि हैं और अनशन आदिक अनेक प्रकारकी बाह्य तपस्यावोंके बलसे वे अपना अन्तरङ्ग तप भी बढ़ा रहे हैं। अन्तरङ्ग तप है सर्व परद्रव्योंकी इच्छाका अभाव करना, निरोध करना। ऐसी अन्तरङ्ग तपस्याके बलसे ये साधुजन नित्य आनन्दस्वरूप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एक विशुद्ध आत्मस्वभावमें तप रहे हैं, इस अपने आपमें विजय पा रहे हैं, अतएव वे तपस्या से भी युक्त हैं। ऐसी विशिष्ट योग्य विजय होने पर भी जब कभी चूंकि उत्तम संहनन आदिक नहीं होनेसे योग्य प्रकारसे शक्तिका विकास नहीं होता तब इस भावमें, निर्विकल्प समाधिमें निरन्तर ठहरनेके लिए असमर्थ हो जाते हैं। उस समय ये मुनिजन क्या किया करते हैं, इसे सुनिये।

शुभोपयोगप्रवर्तनका कारण—जिनका लक्ष्य विशुद्ध है और जब कभी अपनी उस लक्ष्मीका आलम्बन भी कर लेते हैं, निर्विकल्प समाधिमें उपन्न हुए सहज शुद्ध आनन्दका अनुभव भी कर लेते है, इतनी विशिष्टता होनेपर भी विशिष्ट संहनन आदिक शक्तियोंका अभाव होनेसे जब वे अपने इस लक्ष्यमें ठहर नहीं पाते हैं उस समय वे कभी तो शुद्ध आत्मा की भावनाके अनुकूल जीवादिक पदार्थोंका प्रतिपादन करने वाले आगमकी रुचि करते हैं। शुद्धरुचिक साधुके वचनोंको सुनें तो उस तत्त्वमर्मको जानकर चित्तमें हर्ष उत्पन्न करना ये सब शुभोपयोग किया करते हैं और कभी उस शुद्ध आत्मतत्त्वकी बात दिखाने वाले, सुनाने वाले, मार्ग बताने वाले साधुजनोंका सन्मान दान सेवा आदिक किया करते हैं।

अनुरागका प्रभाव—जैसे कि किसी पुरुषको अपनी स्त्रीसे अधिक अनुराग है और उसकी स्त्री अपने माता पिताके घर है, मायकेमें है, उस स्वसुरालसे कोई पुरुष आये हों तो यह पुरुष उन पुरुषोंका बड़ा आदर करता है। आदर करता जाता है पर लगन लगी है स्त्री प्रेमकी ही ना, अतएव स्त्रीकी बात भी बीच-बीचमें पूछता जाता है। उनका सन्मान इसलिए कर रहा है यह पुरुष, चूंकि उसके प्रेमके एक साधन मात्र स्त्रीके ग्रामसे आये हुए ये पुरुष हैं, उनसे स्त्रीकी खबर विशेष मिलेगी आदिक आशय है, अतएव वहाँसे आये हुए पुरुषोंका सन्मान करता है, उनकी सेवा करता है। ऐसे ही जिस ज्ञानी संतको शुद्ध अंतस्तत्वकी तीव्र रुचि जगी है उस शुद्ध अन्तस्तत्वके नगरके निवासी जो साधुसंत पुरुष हैं उन साधु संत पुरुषोंका सन्मान दान पूजन आदिक करते हैं, करते जाते हैं और उनकी मुद्राको देख-देखकर शुद्ध अन्तस्तत्व खबर लेते रहते हैं, और कभी तो विनम्र होकर इस शुद्ध अंतस्तत्त्वकी कुशलताका समाचार भी पूछते हैं, उस शुद्ध अंतस्तत्त्वके प्रभावका, चमत्कारकारका भी वर्णन सुना करते हैं। यों ये साधु संत पुरुष जो निर्विकल्प समाधिमें स्थिर नहीं रह पाते हैं वे क्या क्या किया करते हैं उसका यह वर्णन चल रहा है अर्थात् वे शुभोपयोगसे अपने आत्माको पुण्यरूप कर रहे हैं।

ज्ञानियोंके पुराणपुरुषोंकी कथाके श्रवणका लक्ष्य—ये भव्य संत कभी इस मुक्ति लक्ष्मीको वश करनेके लिए निर्दोष परमात्मा तीर्थंकर परमदेवके चरित्र पुराण भी सुनते हैं। गणधर देव, सागर, भरत, राम, पांडव आदिक अनेक महापुरुषोंके चरित्र पुराणोंको सुनते हैं, वे भी ऐसी कुशल उस मुक्ति लक्ष्मीको वश करनेके लिए सुनते तो सही उनका कुछ चरित्र,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
उनकी करामातें, जिन्होंने इस मुक्तिलक्ष्मीको वश कर लिया है अर्थात् मुक्त हो गए हैं, ऐसे पुरुषोंकी जीवनचर्चा सुनते तो सही, परन्तु अपने लिये वे शिक्षा लेते रहते हैं। क्या किया, कैसे रहे, घरमें रहे तो किस प्रकार जलसे भिन्न कमलकी नाई रहे। साधु हुए तो किस प्रकार से पुरुषार्थ प्रकट करके समस्त उपसर्ग संकटोंको कैसे उन्होंने दूर किया, कैसे कष्टसहिष्णु बने और कैसे उन्होंने ध्यान किया, कैसे निजमें गुप्त रहे ? अहा, यों यों, तभी तो आखिर मुक्ति श्री उनके वश हो ही तो गयी। ये भव्य संत ऐसी मुक्तिश्रीको जिन्होंने वशमें किया है उनका चरित्र भी सुनते हैं, एक तो यह प्रयोजन है महापुराण पुरुषोंके चरित्र सुननेका।

अनुरागका योग्य धाममें न्यास—महापुरुषोंके चरित्र सुननेका दूसरा यह प्रयोजन है कि अब यहाँ रागका उदय आया तो जैसे कुछ मंत्रवादी ऐसा किया करते हैं कि देखो ये ओले पड़ने ही वाले हैं, ये रुकते नहीं हैं तो उन ओलोंको दूसरी ऐसी जगह गिरा देते कि जहाँ नुक्सान न हो और अपनी खेती बच जाय। तो इसी तरह ये रागादिकके ओले पड़ने वाले हैं, ये निवारे नहीं जा रहे, ऐसे प्रवाहसे उठने वाला राग है तो अब इस रागको कहाँ पटकें, कहाँ लगायें जिससे हमारे शुद्ध अन्तस्तत्त्वकी रक्षा बन सके, उन्हें ये शुभरागमें लगाते हैं, चरित्र सुनें, पुराण सुनें। वहाँ यह भाव है कि कहीं यह राग खोटी जगह लग जायगा, विषयकषायों के साधनोंमें लग जायगा तो फिर संसार लम्बा हो जायगा।

अन्तस्तत्त्वके अनुरागियोंकी सावधानी—जिन्होंने आत्माके हितकी धुन बनायी है ऐसे साधु पुरुष कैसे सावधान रहते हैं ? उनको केवल आत्महित ही प्रिय है, संसारका कोई वैभव उन्हें रुचिकर नहीं है। जो कुछ वे करते हैं इस शुद्ध अन्तस्तत्त्वकी सिद्धिके लिए करते हैं। ये अशुभ रागसे हटनेके लिए शुभ धर्मका अनुराग उत्पन्न करते हैं और इस तरह उस अनुरागवश महापुरुषोंके चरित्र भी सुनते हैं। जो कोई पुरुष गृहस्थ हो तो वह भेद और अभेद रत्नत्रयकी भावनाकी सिद्धि करने वाले आचार्य, उपाध्याय, मुनिजनोंकी पूजा आदिक करता है, यह बतायी जा रही है उन ज्ञानी साधकोंकी बात कि जो लक्ष्यरूप पहुंच तो गए हैं और कभी-कभी लक्ष्यका अनुभव भी कर लेते हैं, अद्भुत विचित्र आनन्दका अनुभव भी होता रहता है, किन्तु अपनी विशिष्ट संहनन आदिक शक्तियां न होनेसे जब वे इस निर्विकल्पसमाधिमें स्थिर नहीं रह पाते तो वे क्या किया करते हैं, इस बातका वर्णन चल रहा है। लो यों शुभोपयोग किया करते हैं यह उसका उत्तर है। इसके फलमें उनपर बीतती क्या है, इसे भी सुनो।

ज्ञानियोंके शुभोपयोगका प्रभाव—शुद्धोपयोगका लक्ष्य रखने वाले और कभी-कभी शुभोपयोगमें प्रवृत्ति करने वाले ऐसे इन पुरुषोंकी चूंकि शुभोपयोगमें प्रवृत्ति है और शुद्धोपयोग का लक्ष्य है, इन दोनोंके समन्वयके कारण, शुद्धोपयोगके लक्ष्यके कारण अनंत संसारकी स्थिति का छेद तो हो गया। अब ये संत पुरुष अनन्त संसारके पात्र नहीं रहे, निकटभव्य हैं, कुछ
Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org
काल बाद मुक्ति प्राप्त करेंगे। लेकिन ये तद्भव मोक्षगामी नहीं हैं। जो शुभोपयोगमें प्रवृत्ति रखते हैं उनका उस भवसे मोक्ष नहीं है, नहीं है मोक्ष तो भी पापास्रवका भाव तो नहीं, पुण्यास्रवका परिणाम तो है ना। उस पुण्यास्रवके परिणामसे उस भवमें ये निर्वाण तो प्राप्त नहीं करते, किन्तु इस भवके बाद अन्य भव जो पायेंगे वे देवेन्द्रादिक उच्च पद पायेंगे, लो पा लिया देवादिक पद। वहाँ बिमान परिवार आदिक अनेक विभूतियाँ मिलीं, तो चूँकि पूर्वभवमें इनको शुद्धोपयोगका लक्ष्य था और उसके संस्कारमें पले हुए इन जीवोंने देवेन्द्रपद पा लिया तो भी उस संस्कारके कारण ये उस विभूतिको तृणके समान गिन रहे हैं।

ज्ञानियोंके शुभोपयोगकी परम्परया मोक्षहेतुता—इस जीवको इस परिवार और अन्य वैभव परिग्रहोंसे कौनसी सिद्धि होगी? यह तो केवल अपने स्वरूप मात्र है। इसमें जो कुछ गुजरता है, परिणमन होता है वह सब इसका परिणमन है। उसमें दूसरा पदार्थ क्या करता है? प्रत्येक पदार्थ प्रत्येक पदार्थसे अत्यन्त भिन्न है। यह विभूति क्या है, जड़ पुद्गलों का संचय है, परमाणुवोंका पुञ्ज है, यह तृणवत् है, हितरूप नहीं है। ऐसी मान्यतामें वे ज्ञानी उस देवपदवीके योग्य धर्मसाधनमें व्यतीत करते हैं, विदेहक्षेत्रमें जाकर, जहाँ कि सदैव तीर्थंकर विराजमान रहते हैं, उन महाविदेहोंमें जाकर समवशरणमें वीतराग सर्वज्ञदेवके दर्शन करते हैं और निर्दोष परमात्माके आराधक गणधरदेव आदिकके भी दर्शन करते हैं और वहाँ परमेष्ठियोंके दर्शन करके अपने धर्ममें और दृढ़ होते हैं। अवधिज्ञानबलसे पूर्वभवकी बातोंका स्मरण करके अथवा जो कुछ सुना करते थे, जो पूर्वभवमें समझा था कि ऐसे-ऐसे अरहंत प्रभु होते हैं, लो अब मैं यहाँ साक्षात् दर्शन कर रहा हूं, उससे तो और दृढ़ता होती है। तब वे चतुर्थगुणस्थानमें जिस स्थिरताके साथ आत्मभावना बन सकती है उस आत्मभावनाको अब ये देवेन्द्र छोड़ते नहीं हैं। जिस परिणतिसे, जिस भावनासे आत्मामें विशुद्ध आनन्द जगा है उस आनन्दका अनुभव करनेके बाद उसे छोड़नेको चित्त कैसे चाहेगा? चाहे उस आनन्दको ही बारबार न पा सकें, देर तक न पा सकें, लेकिन दृष्टि उस भावनाकी ओर ही रहती है। इस प्रकार धर्ममें दृढ़चित्त होते हुए ये स्वर्ग लोकमें अपना समय व्यतीत करते हैं।

शुद्धोपयोग और शुभोपयोगके समन्वयकी स्थिति—यह बात सुनाई जा रही है अन्तस्तत्त्वके परिचयी शुभोपयोगी मोक्षमार्गी जीवोंकी। साधुपदसे लेकर कि जहाँ विशुद्ध लक्ष्य समझमें आया था और उस लक्ष्यके अनुसार आत्मीय अनुभव भी जगा करता था। लेकिन उस अनुभवको सदा रखनेकी सामर्थ्य नहीं जग पायी थी, तब उन्होंने इस स्थितिमें क्या किया और उसके फलमें क्या मिला? चूंकि वहाँ शुद्धोपयोगका और शुभोपयोगका एक समन्वयसा बना हुआ था, उसके फलमें देवेन्द्र हुए। देवेन्द्रोंकी शोभा इसीमें है, उनका बड़प्पन इसीमें है कि ऐसी बड़ी विभूति पाकर जो मनुष्योंके सम्भव नहीं है, चक्रवर्तियोंके भी सम्भव नहीं
Version 1

होता ऐसी महर्द्धिक विभूतिको पाकर उसे भी तृणके समान समझें। इस थोड़ी-सी विभूति को पाकर उसको चित्तमें चिपकाये रक्खें, यह तो मोही जनोंका काम है, जिनको संसारमें और अनेक कुयोनियोंमें रुलनेका काम पड़ा हुआ है। महंत पुरुष तो वे हैं कि जो कुछ उन्हें मिला है उसे तृणवत समझते हों। ये देवेन्द्र जिनके कई हजार देवांगनाएँ हुआ करती हैं, जिनका शासन असंख्यात देवोंपर चल रहा है, जिनमें अनेक प्रकारके चमत्कार करने वाली ऋद्धियाँ प्रकृत्या मिली हुई हैं, जिनका शरीर दिव्य है, कई-कई हजार वर्षोंमें क्षुधाकी कुछ वेदना होती है और वह भी कंठसे अमृत झरकर शान्त हो जाती है, कई-कई पखवारोंमें श्वास लेनेका कष्ट करना पड़ता है। ऐसे बड़े सुखोंसे सम्पन्न ये देवेन्द्र उस सारे वैभवको तृणके समान देख रहे हैं और समय व्यतीत कर रहे हैं धर्मके अनुरागमें, भगवानकी भक्तिमें। समवशरणमें जाना, प्रबंध करना, गणधर आचार्य आदिकका भी विनय सम्मान बनाना—ये सब शुभोपयोगके कार्य भी देवेन्द्र कर रहे हैं।

पूर्वसंस्कारका प्रभाव—ज्ञानी तपोधनने देवेन्द्रादिपदमें जन्म लेकर सागरों पर्यन्तका, असंख्यात वर्षोंका समय धर्मप्रवृत्तियोंमें व्यतीत किया, उसके बाद जीवनके अंतमें जब देवायुकर्म का क्षय होनेको है, उस क्षणके बाद वे स्वर्गसे आकर मनुष्यलोकमें चक्रवर्ती आदिक जैसी बड़ी विभूतियोंको प्राप्त करते हैं। लोग अपने घर पुत्रके उत्पन्न होनेपर बड़ी खुशियां मनाया करते हैं। खुशी क्या मनाते हैं, खुशी खुश होकर मनानी पड़ती है। भला ऐसे स्वर्गोंमें जो बड़े देवेन्द्र थे, जिनकी अतिशय ऋद्धियां थीं, जिनका बड़ा चमत्कार था, जिन्होंने असंख्यात वर्ष जैसे लम्बे समय तक उस धर्मका अनुरागभरा अतिशय पुण्य कमाया, ऐसा जीव यहाँ किसी मनुष्यके यहाँ उत्पन्न हो तो उसका पुण्य क्या यहाँ न करायेगा? उसके पुण्यका यह प्रताप है कि सारे नगरके लोग उसकी खुशी मनाते हैं। भला जो किसी महामंडलेश्वर राजा के चक्रवर्ती होने वाला पुत्र बने या अन्य वैभववान पुत्र बने तो उसे बचपनसे ही बड़ा वैभव प्राप्त होगा। इतनी विभूति प्राप्त करके भी धन्य है वह ज्ञानी पुरुष, भले ही वह अभी बालक है, लेकिन पूर्वभवमें जिस शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना की थी उसके संस्कार मिटते नहीं हैं, वे बने हुए हैं। उस शुद्ध अन्तस्तत्त्वकी भावनाके उपयोगसे इतनी बड़ी विभूतियोंको पाकर भी उनमें मोह नहीं करते हैं।

जन्मजात निर्मोहता—ये ज्ञानी पुरुष जब तक यहाँ गृहस्थीमें हैं तब तक भी उस वैभवके बीच रहकर निर्मोह हैं, और अनेक बालक तो ऐसे भी होते होंगे कि जन्मसे लेकर अन्त तक उन्होंने वस्त्र भी न पहिने हों। १०-१२ वर्ष तक तो बालक अब भी नंगे ही फिरा करते थे। कुछ वर्षोंके बादसे यह प्रथा चली है कि चाहे ६ माहका भी बालक हो उसे भी कुछ न कुछ पहिना दिया करते हैं। देहातोंमें अथवा देहातोंके जो वृद्ध लोग हैं उनसे पूछो तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वे बतायेंगे कि १०-१५ वर्षके बालक नग्न ही रहा करते थे। हुए हों कोई ऐसे बालक जो ७-८ वर्ष ऐसे ही नंगे रहे और फिर मिल गया सुयोग कहीं मुनिधर्म सुननेका, प्रतिभा विशेष हो, ज्ञान आ जाय और वह निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण कर ले, यह एक बात कही जा रही है। कभी उन्होंने अगर कपड़े पहिन भी लिये हों तो उसको गौण करके इस बातको सुनो। हुए हैं कोई ऐसे योगिराज। कितने ही लोग गृहस्थावस्थामें गृहस्थीके सब कुछ काम करके भी उस विभूतिको तृणवत् गिनते हुए उस वैभवसे विरक्त रह-रहकर गृहस्थावस्थासे विरक्त रहकर विषयसुखोंका परित्याग करके जिनदीक्षाको ग्रहण करते हैं।

निर्विकल्प समाधिकी पुष्ट स्थिति—अब ज्ञानी पुरुषकी वही स्थिति फिर आ गयी जो स्थिति इनके तीसरे भव पहिले थी। लेकिन उस स्थितिकी अपेक्षा अब इस भवमें बल विशेष मिला है। तब निर्विकल्पसमाधिका लक्ष्य तो था और उस समाधिबलसे आत्मतत्त्वका बहुत-बहुत बार स्पर्श भी किया करते थे, लेकिन उसकी स्थिरता न होनेसे वे शुभोपयोगमें अपना समय भी गुजारते थे, लेकिन अब इस भवमें उन्हें ऐसा महान बल मिला है कि निर्विकल्प समाधिका अब उत्कृष्ट विधान बन रहा है, उस बलसे विशुद्ध ज्ञानदर्शनस्वभावी निज शुद्ध आत्मामें वे स्थित हो रहे हैं।

अन्तस्तत्त्वके परिचयीके अन्तस्तत्त्वके अनुभवकी सुगमता—जैसे यहाँ जिस करोड़पतिको करोड़ोंका वैभव मिला है उसे वह सुगम और सस्तासा दिखता है। जिसे अरबोंका वैभव मिला है उसे वह भी सस्तासा दिखता है, भले ही शतपति, हजारपतियोंके लिए वह बड़ी कठिन बात सी लग रही हो, पर जिसका जहाँ प्रवेश है, अधिकार है उसे वह सुगम नजर आता है। इस दृष्टान्तके अनुसार क्या कहें, इससे भी विलक्षण बात यह है कि जिसे अपने शुद्ध आत्मतत्त्वका स्पर्श हुआ है, अनुभव जगा है उसे तो यह इतना सुगम मालूम होता है काम, कि कठिन है कहाँ ? यह स्वयं ही ज्ञानानंदघन है, ज्ञानस्वरूप है, बस इस निज उपयोग से इस निज ज्ञानस्वरूपको निहारनेमें कौनसी मुसीबत है ? यह तो अत्यन्त सुगम काम है। सुगम काममें स्थिरता अधिक रहती है।

स्वच्छ ध्यान—इस निर्विकल्प समाधिके बलसे यह जीव इस शुद्ध ज्ञानस्वभावी निज शुद्ध आत्मतत्त्वमें स्थिर हो गया है। ऐसा स्थिर हो गया है कि अब यह प्रथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यानसे भी ऊंचा उठकर एकत्व वितर्क अवीचार शुक्लध्यानमें स्थित हो गया है। शुक्लध्यानका अर्थ है सफेद ध्यान, निर्दोष ध्यान। रागके रंगकी रंच कणिका भी न रहना और रागके सम्बन्धसे जो अस्थिरता उत्पन्न हुई थी याने ज्ञप्तिपरिवर्तन हुआ था उस ज्ञप्तिपरिवर्तन कर्मसे भी रहित ऐसा सफेद ध्यान शुक्लध्यान परिणाम करके यह जीव शेष समस्त घातिया कर्मोंका विनाश करके कुछ समय बाद अघातिया कर्मोंका क्षय करके परमो-

Version 1

त्कृष्ट मोक्ष अवस्थाको प्राप्त करता है।

अरहंतसिद्धचेइयपवयणभत्तो परेण णियमेण।
जो कुणदि तवोकम्मं सो सुरलोगं समादियदि ॥१७१॥

शुभोपयोगकी शिवावरोधकताका समर्थन—अरहंत आदिक शुद्ध आत्मावोंमें भक्ति करने मात्रसे भी उत्पन्न हुआ जो राग है वह राग भी साक्षात् मोक्षका अंतरायरूप है। इस विषयका वर्णन पूर्व गाथामें भी किया गया था और अब इस गाथामें भी उस ही का समर्थन कर रहे हैं। जिस किसी प्रसंगमें जो बात विशेषतया कही हुई है वह एक बार ही कहे जानेमें सन्तोष उत्पन्न नहीं होता, उसका दुबारा समर्थन किया जाता है और इसीकी ही नकल सोसाइटियोंमें है। प्रस्तावकने प्रस्ताव किया, समर्थकने समर्थन किया, इसके बाद बहुसम्मतिसे पास होता है। प्रथम बार कहना एक प्रस्तावरूप होता है और उसका दुहराना एक समर्थनकी चीज बन जाती है। जो चीज उपादेय है, जिस तत्त्वपर अमल करनेमें हित है उसके वक्तव्यके बाद समर्थन हुआ करता है। यहाँ कोई खास आवश्यकता न थी कि कही हुई बातको फिर पुनः दुहराया जाय, लेकिन धर्मके कामपर धर्मानुराग अथवा शुभोपयोग ही कहीं जीवके अन्तिम लक्ष्यकी चीज न बन जाय, इस कारण करुणा करके आचार्यदेव साधुसंतजनोंको प्रतिबोधित करनेके लिए दुबारा भी यही बात कह रहे हैं। जो पुरुष अरहंत सिद्ध चैत्य और प्रवचनकी भक्तिमें परायण हुए हों, उत्कृष्ट नियमके साथ तपस्यारूप सत् कर्मको करते हैं, तपश्चरण करते हैं वे पुरुष स्वर्गलोकको प्राप्त करते हैं।

पुराण पुरुषोत्तम—अरहंत कहलाते हैं—पुराणपुरुषोत्तम। अच्छा बताओ—अरहंत देव मनुष्य हैं या नहीं? कुछ तो झिझक होती है कि हम उन्हें मनुष्य कैसे कह दें, वे तो परमात्मा हैं और मनुष्य न कहें यह भी तो ठीक नहीं है। आखिर मनुष्यगतिमें ही तो हैं, इसी कारण उन्हें पुराण पुरुषोत्तम शब्दसे कहा गया है। अरहंतदेव अब लोकव्यवहारमें प्रवृत्ति नहीं करते हैं। मोह रागद्वेषसे सर्वथा रहित हो गए हैं, केवलज्ञान केवल दर्शनसे सम्पन्न हो जानेके कारण वे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं। वे हम आप लोगोंकी तरह किसीकी बात सुनें और उसका जवाब दें ऐसी भी प्रवृत्ति उनके नहीं है। जैसे लोग किसी बड़े आदमीका सम्मान सेवा करते हुए अन्तरमें श्रद्धा और विनयमय भय दोनों रखते हैं, उनका भय दोषरूप नहीं होता किन्तु गुणरूप बन जाता है। श्रद्धाके साथ लगा हुआ भय दोषरूप नहीं होता, वह विनय रूपमें परिणत हो जाता है।

प्रभुकी छत्रछायामें—प्रभु अरिहंतदेवकी भक्तिमें उनके विहारप्रबंधमें, उनके उपदेशप्रबंधमें इन्द्र कुबेरदेव सभी जन सहयोग देते हैं, व्यवस्था बनाते हैं बड़ी श्रद्धासे, फिर भी उनमें से कोई अथवा मनुष्योंमेंसे कोई भगवानके निकट पहुंच जाय, बात करने लगे, ये सब बातें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं बन पाती हैं क्योंकि वहाँ सभी जीवोंकी श्रद्धा और विनयपूर्ण भय अथवा विनय ही बहुत भरा हुआ है और दूसरी बात यह है कि लोग बोलकर करें क्या? उनके राग और द्वेष नहीं है। प्रभुके रागद्वेष नहीं हैं इतने मात्रसे इनकी बड़ी भक्ति नहीं हुआ करती, साथ ही वे सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं, गुणसम्पन्न हैं इस कारण तीन लोकके इन्द्र उनकी भक्तिमें रत रहा करते हैं। यहाँ भी तो कोई पुरुष ऐसे होते हैं कि जिन्हें किसी ओरका पक्षपात नहीं होता। राग और द्वेषसे वे अलग रहा करते हैं, लेकिन उनमें कुछ और गुण हों, जानकारी हो, हित की भावना भी हो, हितका कार्य भी करें तो लोगोंका आकर्षण उनकी ओर विशेष होता है। तो प्रभु भगवानमें निर्दोषता और गुणसम्पन्नता दोनों ही प्रकट हैं, उनकी भक्तिमें इसी कारण तीनों लोकके जीव रहकर अपने जन्मको सफल मानते हैं।

प्रभुदर्शनसे निःसंदिग्धता—अरहंतदेवकी मुद्राके दर्शन करते ही जिसके चित्तमें जिस प्रकारकी शंकाएँ उठ रही हों उन शंकाओंका समाधान उनके ही ज्ञानस्फुरणके कारण हो जाय करता है, और इतने पर भी न हो कदाचित तो प्रभुकी दिव्यध्वनि सुनकर जो चित्तमें एक हर्ष उत्पन्न होता है जो कि अत्यन्त विलक्षण है, उस हर्षातिरेकके समयमें ऐसा ज्ञान-स्फुरण होता है श्रोताओंके कि शंकाका समाधान वे स्वयं प्राप्त कर लेते हैं। भैया! शंकाका उठना भी योग्यतापर निर्भर है। जो जितने क्षयोपशम वाला होगा वह उस सीमाके भीतर ही तो कुछ शंका उत्पन्न कर सकेगा योग्यताके भीतर ही शंका उत्पन्न होती है तो उसका समाधान स्वयमेव हो जाता है। कठिनाई तो तब पड़ती है कि कोई पुरुष बड़ी तेज सूक्ष्म शंका करले और उतनी योग्यता थी नहीं तो उसका समाधान मिलना कठिन होता है। यों यह अतिशय भी अरहंत प्रभुके दर्शन और दिव्यध्वनिके श्रवणमें प्राप्त होता है।

विरोधियोंकी विरोधसमाप्ति—तीसरा अतिशय जो एक अंतः प्रभाव पैदा करे वह है बैर विरोधके भावके समाप्त कर लेनेका। समताकी मूर्ति सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभुके निकट पहुंचने पर चूँकि यह भक्तिभावसे प्रभुपादमूलमें गया ना, अतएव उसके चित्तमें अब बैर विरोधका स्थान नहीं रहता है।

विपरीतवृत्तियोंका समवशरणमें अस्थान—शास्त्रोंमें यह वर्णन है कि समवशरणमें मिथ्यादृष्टि जीव नहीं पहुंचते। उसका अर्थ सभी मिथ्यात्वदृष्टि जीवोंसे नहीं है, किन्तु जिनमें उद्दण्डता है, जिनका परिणाम विनयसे युक्त है ही नहीं, ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव समवशरणमें नहीं पहुंच सकते। जिनका होनहार भला नहीं है वे मिथ्यादृष्टि क्यों नहीं पहुंचते? उसमें दो कारण हैं जो नहीं पहुंचने देते। प्रथम तो यह है कि ऐसे उद्दण्ड मिथ्यादृष्टिका भाव ही नहीं हो सकता कि हम समवशरणमें जायें, अतः वह स्वयं जाता ही नहीं है। कदाचित कोई उद्दण्डता मचानेके लिए जाय तो वहाँ देवशक्तिका इतना उच्च प्रबंध है कि वे जाने नहीं देते

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
हैं। किन्तु वहाँ कोई मिथ्यादृष्टि पहुंचता ही नहीं है—यह बात घटित नहीं होती, क्योंकि वहाँ अनेक जीवोंको सम्यक्त्व पैदा होता है तो कैसे होता है और यह भी वर्णन आता है कि यह जीव अनेक बार समवशरण भी पहुंचा, किन्तु सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं हुआ—यह भी बात कैसे घटे ? हाँ यह बात अवश्य है कि उद्दण्ड मिथ्यादृष्टि वहाँ पहुंच नहीं सकता।

अर्हद्भक्तिकी बुनियाद व फल—सर्वज्ञ सर्वदर्शी सर्वहितैषी अरहंतदेव, जरा सुनिये, प्रभु वीतराग हैं सो अब तो हितैषी नहीं हो रहे हैं, मगर हितका काम तो कर ही रहे हैं तब हितैषीके एवजमें हितोपदेष्टा कहिये। ऐसे प्रभु अरहंतदेवकी भक्ति तभी तो बनेगी जब वैराग्य से चित्त ओतप्रोत होगा। यों ही केवल राग-रागमें अर्हद्भक्ति नहीं बनती, किन्तु किसी अंशमें वैराग्य है, किसी अंशमें राग है, ऐसी स्थितिमें अर्हद्भक्ति बना करती है। इस अर्हद्भक्तिमें जो शुभ अनुराग है, धर्मका अनुराग है, अल्पराग है, ऐसे अध्यवसाय भावसे जो जीवके विभावका वातावरण बनता है वह साक्षात् मोक्षको प्रदान करनेमें अन्तराय करता है और वह परिणाम देवआयु देवगतिका बंध कराता है और इसके फलमें यह जीव स्वर्गलोकमें अथवा ऊर्द्धलोकमें, नवग्रैवेयक आदिकमें सर्वार्थसिद्धि तकमें यह जीव उत्पन्न हो जाता है। वैराग्यकी अधिकता हो तो यह सर्वारिसिद्धि तक पहुंच जाता है, किन्तु अर्हद्भक्तिकी प्रमुखता हो तो यह स्वर्गलोकमें उत्पन्न हो जाता है। वहाँ क्या बीतती है सो इसे भी सुनिये।

अर्हद्भक्तिका पुण्यफल—स्वर्गलोकमें १६ स्वर्गों तकके देव प्रवीचार सहित हैं, केवल बह्मलोककी दिशा विदिशाओंमें रहने वाले लौकान्तिक देव इस वासनासे रहित हैं। लौकान्तिक देव देवर्षि कहलाते हैं। देव होनेपर भी वे ऋषि तुल्य हैं, द्वादशांगके पाठी हैं, विशिष्ट ज्ञानी हैं और इनको वैराग्यमें ही रुचि रहा करती है। यद्यपि ये भी संयम धारण नहीं कर सकते, क्योंकि शरीरादिककी स्थितियां ऐसी ही हैं, किन्तु इन्हें प्रेम होता है वैराग्यसे। और इसी कारण तीर्थंकर भगवानके गर्भमें, जन्मकल्याणमें, ज्ञानकल्याणमें, निर्वाणकल्याणमें भी ये सम्मिलित नहीं होते, किन्तु तपकल्याणमें ये सम्मिलित हुआ करते हैं। इसी कारण तीर्थङ्कर प्रभुको वैराग्य होनेपर ये लौकान्तिक देव आते हैं और प्रभुके वैराग्यका समर्थन कर चले जाते हैं। तो लौकान्तिक देवोंको छोड़कर १६ स्वर्गों तकके देवोंमें प्रवीचार होता है और जैसे-जैसे नीचेके स्वर्ग हैं वहाँ प्रवीचारकी विशेष प्रमुखता है, सो वे देव विषयविषरूपी वृक्षके सुगंधसे मोहित बने रहा करते हैं।

रम्यलीनता—जैसे कभी कोई पथिक रास्ता चलते-चलते किसी ऐसे बगीचेके निकटसे निकलता है जहाँ बहुत ही मीठी सुहावनी सुगंध चल रही है तो वहाँ यह पथिक कैसा मोहित होता है कि कुछ ठिठक जाता है और वहाँ जो कुछ विचार उत्पन्न हुए थे वे सब रुक जाते हैं, उस सुगंधका उपभोग करनेमें रति हो जानेके कारण अन्य विचार दूर हो जाते हैं। स्वर्गों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org
में ये देव सागरों पर्यन्त विषयोंमें लीन रहा करते हैं। खेदके साथ यहाँ आचार्यदेव बता रहे हैं, इनसे उनका अन्तरङ्ग मोहित हो गया है, उनका विवेक भी ज्ञान भी मोहित हो गया है।

विषयविषरतिकी अनर्थता—यह मोह, विषयविषका प्रेम जीवका अनर्थरूप है। यहाँ शान्ति और सन्तोषका नाम नहीं है। उन समागम और विषयसाधनोंमें क्या तत्त्व रखा है? जो अशान्ति और असन्तोषको ही उत्पन्न करें। मोही जीव केवल कल्पनामें ही तो अपने आपको महान समझ लेते हैं, सुखी समझ लेते हैं, किन्तु वे सुखी हैं कहाँ? ऐसी बात बीतती है उस स्वर्गलोकमें, यह किस परिणामका फल है? अरहंत आदिककी भक्तिमें बुद्धि जिनकी लगी है ऐसे पुरुष जो परमसंयम प्रधान अति विशेष तपको करते हैं उस तपश्चरणके निमित्त से बंधको प्राप्त हुए विशिष्ट पुण्यका यह फल मिला है, इतने ही मात्र रागसे जिसका हृदय कलंकित हो गया है वह पुरुष साक्षात् मोक्षसे तो वंचित है ही, पर ऐसे स्वर्गलोकमें उत्पन्न होकर राग ज्वालावोंसे सागरोंपर्यन्त पच-पचकर क्लेश पाते रहते हैं।

अनवधानीय क्लेश—भैया! एक दुःख तो होता है व्यक्त दुःखीकी भी समझमें आने वाला और एक दुःख ऐसा होता है जो उस दुःखीको भी समझमें नहीं आ रहा है, किन्तु हो रहा है दुःखी, हो रहा है अशान्त व्याकुल। पर अपनी व्याकुलताको वह व्याकुलता नहीं समझ पाता। हाँ उन विषयसाधनोंके प्रसंगमें कभी कोई अन्तराय आये तो वहाँ यह व्याकुलता समझता है। वह व्याकुलता आर्तध्यानमें हुई, रौद्रध्यानमें कोई पुरुष अपनी व्याकुलताकी परख नहीं करता। आर्तध्यानमें व्यक्त समझमें आता है दुःखी जीवोंको भी कि मैं दुःखी हो रहा हूं। स्वर्गलोकमें रौद्रध्यानकी प्रधानता है। जैसे नरकगतिमें आर्तध्यानकी प्रधानता है। जो जीव सुखपूर्वक रहा करते हैं, बड़े साधनसम्पन्न हैं ऐसे जीवोंमें प्रायः रौद्रध्यानकी प्रमुखता रहती है। जो विषयोंके साधन पाये हैं उनके संरक्षणमें उनके उपभोगमें वे आनन्द माना करते हैं। वह मौजकी बुद्धि दुःखोंसे भरी हुई है, अज्ञानसे भरी हुई है। वे अन्तरङ्गमें बड़े संतप्त रहा करते हैं।

पुण्यका बन्धन—यद्यपि ये पुरुष साधु संत शुद्ध आत्माको उपादेय मान रहे हैं, यह सम्यग्दृष्टियोंकी चर्चा है, अज्ञानी तपस्वियोंकी बात नहीं कह रहे, सम्यग्दृष्टि ज्ञानी साधु संतोंके भी जो कि शुद्ध आत्माको उपादेय समझ रहे हैं वे व्रत तपश्चरण आदिक भी करते हैं और निदानका परिणाम भी उनके नहीं है, वे शुद्ध हैं, निर्दोष हैं, इनके यह भी वाञ्छा नहीं उत्पन्न हुई थी कि मैं देवगतिमें जाऊँ, इन्द्र बनूं, वहाँका वैभव पाऊँ, यह निदान भी नहीं था, वे विशुद्ध सम्यग्दृष्टि जीव शुद्ध भावोंसे ही तपश्चरण कर रहे थे, किन्तु संहनन आदिकी शक्ति न होनेसे वे शुद्ध आत्मस्वरूपमें ठहर तो नहीं सके ना। तो ऐसी स्थितिमें प्रथम भवमें उनके पुण्यबंध हो रहा है। साक्षात् मोक्षका काम नहीं बनता है, क्योंकि जो शुद्ध आत्मस्वरूपमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
स्थिर नहीं हो पा रहे वे कहीं राग करेंगे ही। चूँकि यह ज्ञानी पुरुष है, अतएव अरहंत आदिक शुद्ध तत्त्वोंमें राग कर रहा है। उस पुण्यबंधके प्रतापसे यह स्वर्गलोकमें जाकर देव होता है।

देशनाभक्ति—शुद्ध तत्त्वकी भक्तिके प्रकरणमें अरहंतदेवकी भक्तिका प्रथम नाम यों लिया करते हैं कि ये अरहंतदेव हमारी सारी उलझनोंके दूर करनेमें मूलमें निमित्तरूप हैं। अरहंतदेवकी दिव्यध्वनिसे शुद्ध आगमका विस्तार होता है, और इस आगमसे ही जाना जाता है कि सिद्धप्रभु यों होते हैं, तीन लोक तीन कालकी रचना यों है, सभी बातें जो हमारे ज्ञान और वैराग्यकी निर्मलतामें साधक हैं वे सब हमें आगमनेत्रसे ज्ञात हुई हैं।

चैत्यभक्ति—चैत्य चैत्यालय और प्रवचन इनका तो सम्बन्ध अरहंतभक्तिसे है ही। चैत्यकी भक्ति करना अर्हद्भक्ति ही है, क्योंकि चैत्यमें प्रतिबिम्ब अरहंतदेवका ही तो है। ऊर्द्धलोकमें, मध्यलोकमें और जहाँ तक देवोंका निवास है वहाँ तक अधोलोकमें जो अकृत्रिम चैत्यालय हैं उनमें तीर्थङ्करकी मूर्ति नहीं है, किन्तु अरहंतदेवकी मूर्ति है। अरहंतदेवकी मूर्तिमें चिह्न नहीं हुआ करते। जैसे बैल, घोड़ा आदिक २४ तीर्थङ्करोंके चिह्न हैं, अरहंत भगवानकी मूर्तिके निकट अष्ट प्रतिहार्योंका दर्शन होता है, क्योंकि अष्ट प्रतिहार्योंका सम्बंध अरहंत परमेष्ठीसे है। ऐसे अरहंतदेवकी अकृत्रिम प्रतिमाएँ अनुपम विलक्षण रचनाएँ हैं। उस प्रतिबिम्बमें अनेक परमाणु आते हैं और अनेक परमाणु जाते हैं, यों जहाँपर परमाणुवोंका यातायात होने पर भी वे अकृत्रिम प्रतिबिम्ब यथातथा ही रहा करते हैं।

प्रवचनभक्ति—प्रवचनकी भक्ति, शास्त्रकी भक्ति, अर्हद्भक्ति रूप है। हम इन शास्त्रोंसे उस शुद्ध ज्ञायकस्वरूपका ही तो स्मरण किया करते हैं। जिन्होंने इस ज्ञायकस्वरूप स्वका अध्ययन नहीं किया उनके शास्त्र पढ़नेका नाम स्वाध्याय कैसे कहा जाय? वह तो बांचना है। उपन्यासकी किताब कोई पढ़े तो उसे कोई स्वाध्याय करना नहीं कहता। कहानीकी किताब पढ़ने वालेको कोई यह नहीं कहता है कि यह स्वाध्याय कर रहा है। यदि कहानीकी किताबकी ही तरह इन ग्रन्थोंका भी कोई वाचन कर ले तो उसका नाम स्वाध्याय नहीं हो सकता। जिस कथन प्रसंगमें स्वका अध्ययन चल रहा हो वह है स्वाध्याय।

विशुद्ध आशयमें शिक्षाग्रहणकी योग्यता—जैसे कोई कोई पुरुष थोड़ी पूंजी वाला हो तो वह चाहता है कि इस पूंजीका मैं पूरा-पूरा लाभ उठाऊँ। कुछ भी रकम बेकार न पड़ी रहे। हर तरहसे इससे लाभ उठा लूं। ऐसे ही आजके पंचमकालमें हम आप लोगोंको यह ज्ञानकी छोटी पूँजी मिली है तो विवेक तो यही है हमारा कि हम इस छोटी ज्ञानपूंजीके द्वारा पूरा-पूरा लाभ उठा लें, मेरा आशय निरन्तर विशुद्ध रहे। विषयसाधनोंसे अन्तः प्रीति न रहे, आत्महितका भाव जगे तभी यह आत्महितैषी पुरुष प्रवचनके प्रत्येक वाक्यसे, आगमके प्रत्येक वचनोंसे वह आत्महितके लिए शिक्षा ग्रहण कर सकता है। दृष्टि चाहिए आत्महित

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

की जिसकी दृष्टि आत्महितकी नहीं हुआ करती, केवल बाह्यदृष्टि रहती है, हम समाजमें रहते हैं इसलिए हमें यह थोड़ा कुछ पढ़ लेनेका भी काम कर लेना चाहिए, अथवा कुछ दिल बहलाना है, कहीं दिल नहीं लगता है तो यह करलें अथवा देखें तो सही और लोगोंके मामले, कौन किस तरहका कहते हैं अथवा लोगोंमें हमारा भी तो कुछ नाम आये, हम भी तो कुछ धर्मसाधना करने वाले हैं, धर्मात्मा हैं इस भावसे अथवा हमारे कुलमें इस तरहकी बातें चली आयी हैं वे तो निभाना ही चाहिए, ऐसे ही अन्य कारणों और आशयों पूर्वक प्रवचनका पढ़ना यह स्वका अध्ययन नहीं करने देता किन्तु एक ही आशय बना हो, मुझे स्वहित करना है—इस हितभावनासे प्रेरित हो तो वह प्रत्येक वाक्योंसे हितकी शिक्षा ग्रहण कर सकता है।

शुद्धोपयोगके लक्ष्यका प्रभाव—ये तपस्वीजन अरहंत आदिकमें धर्मानुरागके कारण साक्षात् मोक्ष तो नहीं पाते, पर स्वर्गलोकको प्राप्त करते हैं—इसमें यह बात कही गई है कि श्रद्धा पूर्ण निर्मल रखना कि यह धर्मानुराग भी साक्षात् मोक्षका अन्तराय है। फिर दूसरी बात यह समझना कि यह परम्परा मोक्षका कारण है। ऐसी दृष्टि रखकर शुद्धोपयोगके लक्ष्य से चलें तो इससे हमें कल्याणका मार्ग मिलेगा।

तम्हा णिव्वुदिकामो रागं सव्वत्थ कुणदि मा किंचि।
सो तेण वीदरागो भवियोभवसायरं तरदि ॥१७२॥

वीतरागतासे भवसागरका तरण—पूर्व गाथावोंमें वीतरागता ग्रहण करनेका उपदेश किया गया है। रागभावसे क्या-क्या अनर्थ होते हैं और रागके अभावसे क्या कल्याण होता है? इस सम्बन्धमें बहुत कुछ वर्णन करनेके पश्चात् अब आचार्यदेव उस वर्णनसे शिक्षा लेनेकी बात और उस शिक्षापर अमल करनेका फल इस गाथामें दिखा रहे हैं। इस ग्रन्थमें मोक्षमार्ग के विषयमें वीतरागताका उपदेश दिया है। वीतरागता ही मोक्षमार्ग है, इस कारणसे जिसको मुक्तिकी कामना है वह पुरुष समस्त पदार्थोंमें किञ्चिन्मात्र भी रागको न करे। जो किसी भी पदार्थमें राग नहीं करता, वह पुरुष वीतराग होता हुआ संसारसमुद्रको तिरता है।

वीतरागतामें रत्नत्रयसमृद्धि—साक्षात् मोक्षमार्गका कारण तो वीतराग भाव है, बन्धनका कारण रागभाव है। बन्धनके कारणका अभाव होनेसे मोक्ष होता है। बन्धके हेतुवों के अभावसे और बन्धहेतुवोंके अभाव होनेसे, स्पष्टरूपसे होने वाली विशद निर्जरासे कभी कर्मों का अत्यन्त वियोग हो जाता है इस ही का नाम मोक्ष है। वीतरागता ही मोक्षमार्ग है। वह वीतरागता यथार्थ ज्ञान और यथार्थ श्रद्धान बिना नहीं बनती। अतएव वीतरागता कहनेमें रत्नत्रय पूर्ण आ जाता है।

वीतरागताका महत्त्व—भगवान प्रभुके वीतरागता और सर्वज्ञता दोनों बातें प्रकट हैं अर्थात् प्रभु पूर्ण ज्ञानसम्पन्न हैं और समस्त दोषोंसे रहित हैं, फिर भी कुछ दृष्टियोंसे

Version 1

परखा जाय तो इस वीतरागताका बहुत महत्त्व है। सर्वज्ञता भी वीतरागताके कारण प्रकट हुई है। सर्वज्ञताका कारण वीतराग भाव है। समस्त रागादिक दोषोंका अभाव होनेपर ही सर्वज्ञता प्रकट होती है। दूसरी बात यह है कि कदाचित् मान लो सर्वज्ञता तो न हो और वीतरागता रहे तो इसमें आत्माका क्या टोटा पड़ा ? क्योंकि समस्त क्लेशोंका कारण राग है। रागका सर्वथा अभाव हो गया तो वहाँ आनन्द तो प्रकट हो ही गया, और आनन्द ही इस जीवका सर्वोपरि लक्ष्य है। यों भी वीतरागताका बड़ा महत्त्व है।

वीतरागतासे ज्ञानका भी महत्त्व—वीतरागता होनेपर सर्वज्ञता होती है, इसलिए कोई जीव वीतराग ही बना रहे, सर्वज्ञ न हो, ऐसा नहीं होता है, किन्तु एक हित अहितकी दृष्टिसे विचार किया जाय तो यों सोच लीजिए कि वीतरागता है तो आनन्द है। कदाचित् मान लो कोई पुरुष सर्वज्ञ तो हो और वीतराग न हो, यद्यपि वीतराग हुए बिना सर्वज्ञता नहीं होती, पर एक स्वरूपकी विशेषता समझनेके लिए कल्पनामें यह लाइए, जैसे कि कोई मनुष्य बहुज्ञानी होता है, समस्त श्रुतका ज्ञानी है, अवधिज्ञान भी बहुत है, मनःपर्ययज्ञानसे भी सूक्ष्म मनोविकल्प जान लिए जाते हैं, थोड़ा और बढ़ाकर कल्पनाएँ कर लो कि सबको भी जान लिया जाय, वीतराग न हो तो कुछ यहाँ थोड़ा जानते हैं, उस थोड़े जाननेमें इतना दुःखी है, क्योंकि राग मोह साथ लगा है ना। तो जिसके साथ राग लगा हो और सब कुछ वह जान जाय तो वहाँ दुःखका क्या ठिकाना रहेगा ? एक यह कल्पना करके भी वीतरागताका प्रभाव समझ लीजिए। वीतरागताका कितना बड़ा महत्त्व है ?

वीतरागताकी शिवसाधनता—वीतरागता बिना चूँकि मुक्ति नहीं हो सकती, संसारके संकट समाप्त नहीं हो सकते, इस कारण जिन्हें मुक्तिकी कामना है उन पुरुषोंका कर्तव्य है कि सर्वविषयोंमें सर्वपदार्थोंमें किञ्चिनमात्र भी राग न करें। इसमें बहुत-बहुत विस्तारपूर्वक यह बात दिखाई गयी थी कि विषयकषायोंका लगाव, खोटे परिणाम, मन, वचन, कायका खोटी जगह प्रयोग करना ये सब पापोंका आस्रव कराते हैं। यह राग तो त्याज्य होना ही चाहिए सभी सुखार्थियोंको, किन्तु अरहंत सिद्ध चैत्य प्रवचन साधु आदि शुद्ध पदार्थोंके सम्बन्धमें भी जो अनुराग होता है वह अनुराग यद्यपि कषायोंसे हटाने वाला रहनेके कारण परम्परया मोक्षका कारण है, किन्तु साक्षात् तो वह राग भी मोक्षमें अन्तराय बन रहा है। इस कारण यहाँ कह रहे हैं कि अरहंत आदिके विषयमें भी पहुंचा हुआ राग स्वर्गलोक आदिके क्लेशोंकी प्राप्तिके क्लेशोंकी प्राप्तिके द्वारा मनमें अन्तर्दाहके लिए कारण बनता है अर्थात् पुण्य कार्योंके करनेसे पुण्यबंध हुआ, स्वर्गलोकमें उत्पन्न हुए, वहाँ विषयोंका अनुराग होनेके कारण अन्तरमें दाह बन रहा है। तब यह राग भी एक दाहका कारण बन गया, मुक्तिका कारण नहीं बन सका।

दृष्टान्तपूर्वक शुभोपयोगकी विरुद्धकार्यकारिताका समर्थन—जैसे चन्दनका वृक्ष शीतल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होता है, ठंडक पैदा करता है, किन्तु जिस चन्दनके वृक्षमें आग लग रही है ऐसा आग लगा चंदन भी क्या ठंडक पैदा कर देगा ? वह तो दाह ही करेगा। इसी प्रकार यह शुद्धोपयोगरूप धर्म और शुद्धोपयोग जिसके प्रकट हुआ है वह आत्मा विशुद्ध है, निर्दोष है, और उस शुद्धोपयोगका फल शान्ति और निराकुलता है, किन्तु उस शुद्धोपयोगरूप धर्मके साथ-साथ कर्मविपाकवश अरहंत आदिक सम्बन्धी राग लगा है तो राग लगा हुआ धर्म अर्थात् सराग चरित्र सरागधर्म यह भी अन्तर्दाहके लिए कारण बनता है। ऐसा मान करके हे साक्षात् मोक्षकी इच्छा करने वाले भव्यजनो ! समस्त कषाय सम्बंधी रागको छोड़कर अत्यन्त वीतराग होओ।

धर्मपालनका मौलिक उद्यम—सभीका यह कर्तव्य है कि आत्मकल्याणके प्रसंगमें श्रद्धान पूर्ण निर्मल और निर्णायक बनाएँ। हम कितना चल सकते हैं यह बात हमारी शक्ति विकासपर निर्भर है, लेकिन श्रद्धान तो हमारा उतना ही निर्मल होना चाहिए जितना निर्मल साक्षात् मोक्षमार्गपर चलने वाले साधु संतोंका हुआ करता है। फिर उस श्रद्धानके अनुसार हम अपनेको निर्मल बनानेका यत्न रखें, वह यत्न केवलज्ञानरूप है। उस विशुद्ध ज्ञानके जगने पर ये कामकी क्रियायें सब रुक जाती हैं, अथवा अशुभ राग नहीं प्रवर्तातो हैं, यह तो एक फलीभूत बात है, किन्तु किया क्या आत्माने जिसके प्रसादसे ये सारे संकट दूर होते हैं ? वह किया केवल विशुद्ध जाननहार बनना। केवल विशुद्ध जाननहार रहनेमें सभी गुण उदारता, त्याग, क्षमा, निराकुलता सबके सब उसमें आ जाते हैं। धर्मपालन तो यही है कि केवल जो जैसा पदार्थ है उसका वैसा मात्र जाननहार बना रहे, यही है साक्षात् धर्मपालन, और इस ही धर्मपालनके लिए अन्य सर्व कार्य जो व्यवहारधर्ममें किए जाते हैं, इसीलिए किए जाते हैं।

संसारसमुद्र—हे भव्य जनो ! यदि मुक्ति चाहते हो तो समस्त पदार्थोंमें रागको छोड़ कर इस संसारसे तिरकर संसारसे पार चले जावो। यह संसार एक भयंकर समुद्रकी तरह है। जैसे समुद्रमें बड़ी भयंकर कल्लोलें उठा करती हैं, एक एक लहर एक एक भींत बराबर भी उठ खड़ी हो जाती है। बड़ी भयंकर लहरें होती हैं। समुद्रके किनारे बहुत दूर भी खड़ा हुआ पुरुष भयभीत हो जाता है, और कितने ही लोग समुद्रके किनारे अथवा दूर चलते हुए भी समुद्रकी ऐसी लहरोंके लपेटमें आकर अपने प्राणविसर्जन कर देते हैं। बड़ी भयंकर लहरें होती हैं। इस संसारकी दुःख और सुखकी भयंकर लहरें, इन्द्रियजन्य सुख और इन्द्रियजन्य दुःख, मानसिक सुख और मानसिक दुःख—ये ६ प्रकारके सुख और ६ प्रकारकेदुःखकी एक दर्जन कल्लोल लहरें इस आत्मामें हो रही हैं। ये तो एक मोटी कल्लोलें हैं। इनके भीतर भी कितनी ही और कल्लोलें पड़ी हुई हैं। ऐसी सुख दुःखकी लहरोंका भयंकर यह संसार-समुद्र है। दुःखको तो सभी लोग भयंकर समझ लेते हैं, सहा नहीं जाता, किन्तु सुखकी भी लहरें कितनी भयंकर और क्षोभ उत्पन्न करने वाली हैं, इसे सर्वसाधारण नहीं जान सकते।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
किन्तु विवेकी पुरुष ही इसकी माप समझ सकते हैं।

इन्द्रियसुखमें क्षोभकी व्यापकता—ये संसारके सुख, इन्द्रियजन्य सुख काहेके सुख हैं जिन सुखोंके संकल्प करनेमें भी क्लेश होता है, जिन सुखोंका प्रोग्राम बनानेमें भी क्लेश होता है, जिन सुखोंके साधनोंका संचय करनेमें भी बड़ा क्लेश होता है और सुखोंके साधन मिल गए तो उन सुखोंके भोगते समय भी इस जीवमें बड़े क्षोभ मचा करते हैं। इन्द्रियसुख शांतिपूर्वक भोगनेमें नहीं आते, किन्तु कोई क्षोभ है, वेदना है तब वे भोगनेमें आते हैं। चाहे उन सुखोंके भोगनेके फलमें बीमार हो जायें अथवा अन्य-अन्य प्रकारकी मानसिक बाधाएँ आ जायें, अपना धर्म और कर्म सब कुछ भी त्यागना पड़े, पर इन विषयभोगोंको मोही जन छोड़ नहीं सकते। क्योंकि क्षोभपूर्वक ही ये भोग भोगे गए हैं। भोगनेके बाद भी अत्यन्त क्लेश रहता है, और सारी बात तो यह है कि इस सुखके प्रसंगमें आदिसे लेकर अन्त तक सब अज्ञानरूप ही परिणाम रहा। अज्ञान अंधकार एक बहुत बुरी परिस्थिति है।

संसारसागरमें अवगाहकी विपदा—दुःख और सुख दोनों प्रकारकी अनेक लहरोंसे व्याप्त यह संसारसमुद्र है, और फिर कोई शीतल जल भी नहीं है यहाँ। कर्मरूपी अग्निसे तप्तायमान और कलकल करता हुआ जल भार करके भरा हुआ यह संसारसागर है। एक तो भयंकर लहरें हैं और फिर तपा हुआ जल है तो उस समुद्रसे कितना अहित है, उस समुद्रमें अवगाह करनेका कितना कुफल है, ऐसे ही यह संसार एक तो सुख दुःखकी लहरोंसे भरा हुआ है और फिर कर्म अग्निसे यह संतप्त है। हे भव्य जीवो! ऐसे संसारसागरको तिर करके इस संसारसे पार होओ।

संसारकी अरम्यता—इस संसारमें मत रमो। इस भवसे पार होनेका उपाय एक वीतरागता है। हे आत्मन्! तू अपने आपपर कुछ दया करना चाहता है या नहीं? अपने आपकी जिम्मेदारी महसूस कर। इस संसारमें तू अकेला ही है। अनादिकालसे अकेला ही रहा आया है, अनन्त काल तक अकेला ही रहेगा। सुखमें, दुःखमें, जीवनमें, मरणमें सर्वप्रसंगोंमें तू अकेला ही है। जो पदार्थ समागममें मिले हैं ये पदार्थ तुझे भूल-भुलैयामें पटकनेके कारण बन रहे हैं। कितने दिनोंका समागम है? यह तो थोड़े दिनोंका समागम है, लेकिन ये समागम जगह-जगह फिर नवीन-नवीन मिलेंगे और तू वहाँ मोह करेगा तो वर्तमान स्थितिमें तो ऐसा लगा है कि ये समागम बड़े सुखदाई मिले हैं, सो इनकी व्यवस्था और इनका मोह करके, राग करके सुख लूट लो, लेकिन ऐसे समागम बार-बार मिलते हैं, बिछुड़ते हैं और भिन्न-भिन्न प्रकारकी स्थितियोंको उत्पन्न करते हैं। इनमें कुछ सार नहीं है। मोह मत करो।

निर्मोहभावकी साध्यता—भैया! यथार्थ ही सब निर्णय करो। यह सोचना भी एक भ्रमकी बात होगी कि हम लोग गृहस्थ हैं, गृहस्थीसे मोह कैसे छूट सकता है? मोह छुटाना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो उनका ही काम है जो घर त्यागकर साधु हुए हैं, अकेले रह गए हैं, उन्हें मोह छोड़ना चाहिए। भैया ! ऐसा भ्रम न करो जैनशासनकी प्राप्ति अति दुर्लभ है, जैन शासनको पाया है तो उससे अपनी बुद्धि व्यवस्थित बनायें। कोई गृहस्थ भी हो तो भी वह मोहको पूर्णरूपसे दूर कर सकता है। गृहस्थ राग और द्वेषकी बात कर रहे हैं। राग और द्वेष गृहस्थीमें रह कर दूर नहीं किए जा सकते, यह बात तो ठीक है। अथवा यों कह लीजिए कि जब तक रागद्वेष दूर नहीं किए जा सकते तब तक उसकी गृहस्थ जैसी स्थिति रहती है। करना पड़ता है, चारा क्या है, लेकिन मोहका हटा लेना तो सुगम है और सर्वसाध्य है। मोह नाम किसका है ? मोहके पर्यायवाची शब्द हैं अज्ञान, मिथ्यात्व। जो वस्तु अपनेसे अत्यन्त भिन्न है उसे अपनी मानना यही तो मिथ्यात्व हुआ। यह मेरा है, इससे मुझे सुख मिलता है, ऐसी कल्पनाएँ बनाना यही तो मोह है। यह ज्ञान क्या किया नहीं जा सकता है गृहस्थीमें भी रहकर कि प्रत्येक पदार्थ अपने ही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप है, अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे अस्तित्व लिए हुए है, तब मेरा किसी अन्य द्रव्यसे क्या सम्बंध है ? आज जो निकट है, वह कल न रहेगा, और जो एक क्षेत्रावगाह भी हो रहा है, ऐसा यह शरीर भी न रहेगा। ये द्रव्य-कर्म भी न रहेंगे, औरकी बात तो क्या कहें, एक क्षेत्रमें और उसके ही परिणमनरूप उत्पन्न हुए ये रागादिक भी मेरे साथ नहीं रह सकते हैं, ये भी होकर नष्ट हो जाते हैं। क्या हम आप यह ज्ञान नहीं कर सकते।

ज्ञानकी अप्रतिघातता—आपके घरके भीतरी कमरेमें तिजोरीमें सन्दूक रखी हो, उसमें भी पोटरीमें कोई गहना रखा हो तो आप यहाँ बैठे ही बैठे उसका ज्ञान कर लेते हैं कि नहीं ? क्या घरके फाटक या सन्दूक आपके ज्ञान करनेमें कोई बाधा डालते हैं ? आप यहाँ बैठे हैं और ख्याल आ जाय उस गहनेका तो आप तुरन्त उसका ज्ञान कर लेते हैं। ज्ञानको कहीं अटम होती है क्या ? हाँ ज्ञानको अटका देने वाली कोई वस्तु है तो वह रागद्वेषकी परिणति है। हम इस पिण्डमें भवमें ठहरे हुए भी यदि सही-सही ज्ञान करना चाहें, प्रत्येक पदार्थका जुदा-जुदा अस्तित्व निरखना चाहें तो झट निरख लेते हैं। कोई अटकाव करने वाली चीज़ है क्या ? हम जो कुछ भी ज्ञान करना चाहें करते हैं, उसमें हम स्वतंत्र हैं। घरका कोई भी पुरुष कितनी भी मिन्नत करे, कितनी भी बाधा डाले और कुछ भी बात कहे तो वह एक विशुद्ध ज्ञान करनेके कार्यमें कुछ भी अटक नहीं डाल सकता है।

मात्र ज्ञानभावसे मोहका प्रक्षय—प्रत्येक पदार्थ अत्यन्त जुदे-जुदे हैं, अपने-अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे अस्तित्व रखते हैं, किसी भी पदार्थसे रंच भी सम्बन्ध नहीं है। एक संघातरूपमें वस्तु स्कंधरूप, चौकी, तख्त, भींत, खम्भा आदिक किसी भी पदार्थमें अनन्त परमाणुवोंका समूह है ना, वहाँ भी प्रत्येक पदार्थ अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको लिए हुए

Version 1

हैं। कहीं दो परमाणु मिलकर एक सत् नहीं बन जाते हैं। इतनी तो वस्तुवोंमें परस्पर भिन्नता है, ऐसी भिन्नता गृहस्थ समझना चाहें तो क्या समझ नहीं सकते हैं? बस इसीके मायने है मोहका क्षय होना। निर्मोह गृहस्थ अभी चूँकि गृहस्थ जैसी परिस्थितिमें वह है, रागद्वेषका त्याग नहीं कर सकता लेकिन मोह तो पूर्णरूपसे छोड़ सकता है। क्या सम्यग्दृष्टि गृहस्थ हुआ नहीं करते? होते हैं।

अचलित स्वरूपश्रद्धानका कर्तव्य—अपना निर्णय तो निर्मोह परिणाम रखनेका होना ही चाहिए। मुझे तो सही ज्ञान बनाये रहना है, ऐसे निर्णयसे रंच भी विचलित न हों। कभी ऐसे भी बज्रपात हों कि जिनके भयसे ये तीन लोकके जीव भी अपना मार्ग छोड़ दें, पर इस निर्णयको रखनेमें हम कोई कमी न रखें। मैं सबसे न्यारा एक अमूर्त ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्व हूं, इसका कोई क्या बिगाड़ करेगा? डर लग रहा है जो कुछ यह स्वरूपकी संभाल न होनेसे और परवस्तुवोंमें राग अथवा मोह होनेसे यह सब डर लग रहा है। जहाँ परपदार्थोंमें मोह नहीं रहा, राग नहीं रहा वहाँ डर किस बातका? लो बाबा यह मैं इतना ही ज्ञानानन्दमात्र हूं, लो तुमको हम नहीं सुहाते, चले यहाँसे। जहाँ जायेंगे वहाँ ही हम ज्ञानानन्दस्वरूप रहेंगे, अर्थात् मरण प्रसंग भी हो तो लो क्या हर्ज हुआ? लो चले यहाँसे। हम हम ही हैं, मैं मुझमें ही हूं। मैं अपना ही अपने लिए सर्वस्व हूं। ऐसे अपने एकत्वकी ओर जिसका दृढ़ झुकाव है ऐसे पुरुषको कहाँ भय है?

अमृतस्नान—जो पुरुष निर्मोह होकर, वीतराग होकर संसारसागरको पार करता है वह स्वरूप रूप जो परम अमृतसमुद्र है उसमें अवगाह करके शीघ्र ही निर्वाणको प्राप्त होता है। आत्मा तो ज्ञानानन्दस्वरूप है ही। इस ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मापर जो और लेप चढ़ गया है, जो इसमें विकार आया है उस विकार धूलसे उस लेपसे विमुक्त होनेमें जैसा यह स्वच्छ ज्ञानानन्द मात्र है बस वही प्रकट रह गया, इस ही अवस्थाका नाम है मोक्ष। तो हे भव्य जीव! यदि निर्वाण चाहते हो तो एक ही निर्णय रखो, निर्मोह बनो और सर्वपदार्थोंमें राग मत करो याने किसीमें भी राग मत करो। वीतराग बनकर संसारसागरसे तिरकर एक मोक्षरूपी अमृत समुद्रमें अवगाहकर परमशान्ति प्राप्त करो। ऐसा इस गाथामें वीतरागताका उत्साह देनेके लिए अन्तिम उपदेश है।

स्नेहका बन्धन—संसारमें अनुभवमें आने योग्य जितने भी बन्धन हैं वे सब बन्धन मोह और स्नेह भावसे हैं, यह बात कुछ विवेक करनेपर अनुभवमें आ जाती है। बन्धन तो मोह और स्नेहके पीछे लगा हुआ है। किसी विषयसाधनमें स्नेह है और उसमें कोई बाधक बन रहा है तो उससे द्वेष होता है। द्वेष होनेके मूलमें भी कोई न कोई राग कारण है। यों एक स्नेहको ही कह लो कि यही बन्धन है। जिसे बन्धनसे छूटना हो, मुक्तिका आनन्द लूटना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो उसका कर्तव्य है कि जिस किसी भी प्रकार यह स्नेहभाव दूर हो सके, ऐसा यत्न करे। जो निकटभव्य जीव है वह स्नेहभावको दूर करनेके लिए बड़ी विभूतियोंका भी क्षणमात्रमें परित्याग कर देता है। सर्वोपरि करुणा आत्मकल्याण है। अन्य स्नेहोंकी तो चर्चा दूर ही रहो। परमात्मप्रभुमें भी पहुंचा हुआ अनुराग, यद्यपि वह धर्मानुराग है, पर उस अनुरागमें भी पद्धति तो राग वाली ही है। अतएव इतना भी रागका लेश स्वर्गलोकके बंधन और क्लेश का कारण होता है। तब जिन्हें साक्षात् मोक्षकी इच्छा है वे किसी भी पदार्थमें राग न करके वीतराग होकर संसारसमुद्रसे तिरकर केवल शुद्ध स्वरूपके अनुभवरूप निज अमूर्त सुधा समुद्रमें अवगाह करके शीघ्र निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं। इस सम्बंधमें बहुत विस्तार करनेसे क्या लाभ है? अब जरा सारभूत तत्त्वपर एक बार फिर आइये।

शास्त्रतात्पर्य—इस शास्त्रका तात्पर्य है वीतरागता। इस वीतरागताके लिए स्वस्ति हो, नमस्कार हो और यही उपादेय है, इस प्रकारकी बुद्धिपूर्वक इसकी ओर आकर्षण हो। स्वस्ति शब्दमें दो शब्द मिले हुए हैं—सु और अस्ति। सु का अर्थ है भली प्रकार अस्ति मायने होना, भला होना। स्वस्तिमें नमस्कार और आशीर्वाद एवं जयवाद तीनोंमें समन्वय होकर जो कुछ एक भाव बनता है उस भावसे प्रयोजन है स्वस्तिका। मोक्षमार्गका सारभूत यह वीतराग भाव ही है। वीतरागता ही मोक्षका मार्ग है। इस समस्त शास्त्रका तात्पर्य भी वीतरागता है, वह वीतरागता जयवंत हो। कुछ भी व्यक्त किया जाय उसमें दो तात्पर्य होते हैं—एक तो शब्दतात्पर्य और एक आशयतात्पर्य, जिन्हें प्रसंगमें यों कह लीजिए—एक सूत्र-तात्पर्य और एक शास्त्रतात्पर्य। सूत्रतात्पर्य तो प्रत्येक सूत्रमें बता ही दिया गया है। प्रत्येक गाथामें गाथाके समय गाथाका क्या अर्थ है, क्या भाव है, यह बता दिया गया। अब एक बार उन समस्त सूत्रोंमें जैसे समुच्चय रूपसे तात्पर्य जानना है उसका नाम है शास्त्रतात्पर्य। एक वाक्यका भाव और एक समग्र वक्तव्यका भाव। वाक्यके भाव तो प्रति वाक्यकी सीमा तक रहते हैं, उसका आगेके वक्तव्यसे और पीछेके वक्तव्यसे सम्बन्ध नहीं है, परन्तु समस्त वक्तव्य का भाव, उसमें समग्र वाक्य भी सम्मिलित हैं और जो कुछ न कहा गया हो, अब कहा हो वे सब चूलिकाके विषय भी सम्मिलित हैं। इस शास्त्रका तात्पर्य परमार्थसे वीतरागभाव ही है।

शास्त्रकी परमेश्वरता—यह शास्त्र परमेश्वर है, परमेश्वरसे आया हुआ है। प्रायः सभी धर्म वाले अपने-अपने शास्त्रोंको ईश्वरके बनाये अथवा ईश्वरके भेजे आदिक रूपसे मानते हैं। ये जैनशासनके आगम ये परमेश्वरके बनाये नहीं हैं, परमेश्वरके भेजे नहीं हैं, फिर भी इन समस्त आगमोंका परमेश्वरसे मौलिक सम्बन्ध है। परमेश्वर अरहंत भगवान जो सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं उनकी दिव्यध्वनिकी परम्परासे यह समस्त आगम आया हुआ है। भगवानके सम-

Version 1

वशरणमें बहुत बड़ी विशाल रचना होती है, वहाँ दर्शनीय १२ सभायें होती हैं, उन सभावोंमें किसीमें मुनिराज बैठे हैं, किसीमें श्रावक अर्जिकाएँ हैं, किसीमें श्रावक हैं, किसीमें भवनवासी आदिक देव हैं, किसीमें उनकी देवांगनाएँ हैं, किसीमें तिर्यञ्च बैठे हैं, इस प्रकार उन १२ सभावोंमें सभी प्रकारके श्रोतागण होते हैं। समस्त श्रोताओंमें मुख्य और धर्मसंचालक गणधर देव होते हैं।

आगमकी निर्दोष परम्परा—मुनिराजोंमें जो मुख्य हैं, गणोंको धारण करने वाले हैं वे गणधर और उन गणधरोंमें भी प्रमुख गणधर जिनको गणेश भी कह सकते हैं वे नरलोक के समूहमें सरस्वतीके प्रधान अधिपति हैं, विद्यावोंके प्रधान अधिपति हैं और इसी कारण विद्यारम्भके समयमें गणेशका स्मरण किया जाता है। गणेश अर्थात् दिग्गज आचार्य, मुनिजन आचार्य, उपाध्यायजन समस्त गणोंके स्वामी प्रधान हैं। जैसे महावीर स्वामीके समयमें गौतम गणेश हुए हैं, इसी तरह चौबीसों तीर्थंकरके समयमें प्रमुख एक गणेश हुए हैं। दिव्यध्वनिको सुनकर इन गणधर देवोंने द्वादशांगकी रचना की और गणधरोंसे अन्य आचार्योंने अध्ययन किया। आचार्योंसे बड़े मुनियोंने अध्ययन किया, और यह परम्परा निर्दोष अब तक चली आ रही है कि इस परम्परामें श्रद्धासे सहित होकर जो कोई भी साधारण भी गृहस्थ कवि लेखक अपनी लेखनी चलाता है तो उस ही आगमके अनुसार अर्थविस्तार करके लेखनी चलाता है। यों यह आगम परमेश्वरसे प्रणीत है, परमेश्वरसे लाया हुआ है, परमेश्वरके द्वारा प्रज्ञप्त है अर्थात् जताया हुआ है, ऐसा यह परमेश्वर शास्त्र है।

शास्त्रका तात्पर्य वीतरागभाव—इस परमेश्वर शास्त्रका तात्पर्य एक वीतराग भाव है। शास्त्रोंका हितकर और सारभूत एक ही उपदेश है जो राग करता है वह कर्मोंसे बँधता है, जो राग नहीं करता वह कर्मोंसे छूटता है, इस कारण मुक्तिका आनन्द चाहने वाले संत जनों को समग्र पदार्थोंसे रागभावका परित्याग करना चाहिए। यहाँ इस शास्त्रका तात्पर्य बता रहे हैं। पहिले तो शास्त्रकी विशेषता ही समझ लीजिए। कितना विशिष्ट यह ग्रन्थ है ?

शास्त्रमें मोक्षतत्त्वकी प्रतिपत्तिके कारणकी विशेषता—इस ग्रन्थमें समस्त पुरुषार्थोंमें सार अथवा समस्त पुरुषार्थोंका सारभूत जो मोक्षतत्त्व है उस मोक्षतत्त्वकी प्रतिपत्तिका कारण है। इसमें मोक्षतत्त्वके स्वरूपका प्रकाश मिला है। इस ग्रंथमें समग्र वस्तुवोंका स्वभाव दिखाया गया है। वस्तुवोंका स्वभाव एकदम सीधा कैसे दिखाया जाय जब तक उस वस्तुका व्यवहार कथनसे उसकी विशेषताएँ न बतायी जायें ? अतः पदार्थकी विशेषताओंका प्रतिपादन भेद प्रभेद करके किया है।

विशेषताके प्रकार—विशेषताएँ दो प्रकारकी होती हैं—एक तिर्यक् विशेष, एक ऊर्द्ध-विशेष। जैसे किसी चौकीकी विशेषता जाननी है तो चौकीकी विशेषता जाननेकी दो पद्धतियां

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org
हैं, एक तो विस्तार रूपमें समझें यह इतनी लम्बी-चौड़ी है, इसमें ऐसी-ऐसी रचनाएँ हैं— एक तो यों फैलावमें दिख सकने वाली विशेषतावोंका जानना और एक कल क्या था, आज क्या है, इस प्रकार कालभावसे इसकी अवस्थाओंका परिज्ञान करना। इस ही प्रकार समग्र वस्तुवोंके जाननेके दो ही तरीके हैं—एक किसी भी एक वस्तुमें एक साथ फैलावरूप क्या-क्या विशेषताएँ हैं इसे समझना, इन विशेषताओंका नाम है गुण। प्रत्येक पदार्थमें एक साथ रहने वाला विस्तार क्या है ? जैसे आत्मामें ज्ञान, दर्शन, आनंद, शक्ति, सूक्ष्मत्व, अमूर्तत्व कहा जाय ये एक साथ ही अनेक हैं, इसलिए समझमें इसका तिर्यक् फैलाव बन जाता है। दूसरी विशेषता है ऊर्द्धविशेषता। इस आत्माका पूर्वकाल किस परिणतिमें व्यतीत हो, इस समय किस प्रकार व्यतीत हो रहा, इन विशेषताओंका नाम है पर्याय। तो इन गुण और पर्याय तिर्यक् विशेष और ऊर्द्ध विशेषको समझानेके ढंगमें बताये गए ५ अस्तिकाय और ६ द्रव्योंका जो स्वरूप है उस स्वरूपसे फिर वस्तुके स्वभावका दर्शन कराया गया है।

अस्तिकाय व द्रव्य शब्दसे तिर्यग्विशेष व ऊर्द्ध्वताविशेषका संकेत—अस्तिकाय व द्रव्य—इन दो शब्दोंमें ही देख लीजिए कि उन वस्तुवोंका प्रतिनिधित्व आ गया है। अस्तिकाय शब्द तिर्यक् विशेषकी ओर संकेत करता है प्रमुखतासे और द्रव्य शब्द पर्यायोंकी ओर संकेत करता है प्रमुखतासे, अस्तिकाय कहनेसे किसी परवस्तुका जितना फैलाव है, जितना प्रदेशोंमें विस्तार रहता है उतने प्रदेशोंमें दृष्टि गयी है तब यह तिर्यक् परिज्ञान हुआ। उस तिर्यक् परिज्ञानमें गुणोंका परिज्ञान है। द्रव्य किसे कहते हैं ? द्रव्यका भी अर्थ यही है कि जिसने पर्यायोंको प्राप्त किया था, जो पर्यायोंको प्राप्त कर रहा है, जो पर्यायोंको प्राप्त करता रहेगा उसे द्रव्य कहते हैं। इस द्रव्य शब्दकी विशेषताने पर्यायकी ओर दृष्टि दिलायी। यों गुण-पर्यायोंके स्वरूपका प्रतिपादन करते हुए इस ग्रन्थमें वस्तुस्वभावको दिखाया गया है।

ज्ञानमें भेदसे अभेदकी ओर व अभेदसे भेदकी ओर ले जानेकी पद्धति—कल्याणार्थी पुरुष पहिले भेदसे अभेदकी ओर आता है और फिर यह भी हो सकता है कि यह अभेदसे भेदकी ओर जाय। पर अन्तमें पुरुषके लक्ष्यकी पूर्ति इस मोक्षमार्गके प्रसंगमें जो उद्देश्य बनता है उसकी पूर्ति भेदसे अभेदकी ओर आनेमें होती है। संसारके जीव शुभ भावोंसे ही परिचित हैं। अभेदस्वरूप, एकत्वस्वरूप अद्वैतभाव इनसे परिचित नहीं हैं। तब इस भेददृष्टि वालेका क्या कर्तव्य है कि वह इस प्रकारका यथार्थ परिज्ञान करे कि भेदसे उठकर ऊपर चल कर यह अभेदस्वरूपमें जाय। अभेदस्वरूपमें जानेके बाद पूर्व संस्कारके कारण किसी भी जीव में यह सामर्थ्य नहीं हुई कि यह प्रथम ही भेदसे अभेदमें पहुंच गया तो उस अभेदमें ही रम जाय, अतएव उन्हें हजारों बार अभेदसे भेदमें जाना होता है, भेदसे अभेदमें जाना होता है यों हजारों बार परिवर्तन करनेके पश्चात् जीवका कल्याण तब ही होता है जब भेदसे अभेदमें
Version 1

पहुंच कर स्थिर हो जाय तो पहिले गुणपर्यायोंके कथनसे भेदका निर्णय किया।

भेदके यथार्थ निर्णयका विवेक—ये संसारी जीव भेदका भी तो सही निर्णय किए हुए नहीं हैं। भेदका सही निर्णय ही तो व्यवहारसम्यग्दर्शन, व्यवहारसम्यग्ज्ञान है। भेदसे निर्णय यों हुआ कि यह वस्तु है, इतना प्रदेशवान है, इसमें अमुक-अमुक गुण हैं, इसकी इस ही प्रकारकी पर्यायें हैं। भेदज्ञान करनेके बाद फिर समेट होता है। इन सब गुणपर्यायोंका जो समूहरूप एकत्व है वह है पदार्थ। अच्छा, तब इसका स्वभाव क्या है? तो स्वभाव छिन्न-भिन्न नाना नहीं है, किन्तु वह एक रूप है। इस तरह भेदके द्वारसे यह अभेद धाममें पहुंचा। वहाँ पहुंचने के बाद फिर अभेदसे भेदकी ओर भी चल देता है। यों फिर भेदसे अभेदकी ओर आता है। इस प्रकारके तत्त्व कौतूहली बनकर भव्य जीवोंने वस्तुके स्वभावका दर्शन किया है, यह सब इन ही शास्त्रोंसे जाना गया है।

समस्त वर्णनोंका तात्पर्य वीतरागभावकी उपादेयता—यह शास्त्र निश्चय और व्यवहाररूप मोक्षमार्गका भली प्रकार वर्णन करता है। इस मोक्षमार्गकी चूलिकामें व्यवहार मोक्षमार्ग और निश्चय मोक्षमार्गका विश्लेषण करते हुए व्याख्यान किया है। इस ग्रन्थमें बन्ध और मोक्षके भेदपर भी प्रकाश डाला है। जो बंध और मोक्षके आयतन हैं अर्थात् उस बंध विधिके भावसे चले तो बन्धन होता है और उस मोक्ष-विधिके भावसे चले तो मोक्षमार्ग मिलता है। यह सब भी, नौ पदार्थोंका वर्णन करने वाले अधिकारमें बंध और मोक्षका भी स्पष्ट वर्णन किया है। सब कुछ वर्णन करनेके अनन्तर बात यही मिलेगी कि इन शास्त्रोंके हृदयमें वीतरागताका ही स्थान है। साक्षात् मोक्षका कारणभूत यह वीतराग भाव है।

वीतरागभावसे समस्त सुलझेरा—उस वीतराग भावमें शास्त्रका समस्त हृदय विश्रांत हो गया है। शास्त्रमें भी जितना कथन है उस समस्त कथनका हृदय भी वीतरागभाव है जिस भावमें सब कथन विश्रान्त है। बहुत-बहुत वर्णन करनेके बाद अन्तमें जब पूछा जाता है कि इसका सार तो बतावो, इसका ताप्पर्य तो बतावो? तो उसका यही उत्तर है कि वीतरागता ही इस शास्त्रका तात्पर्य है। शास्त्रके अध्ययनका फल लेना हो तो अपने जीवनमें योग्य ज्ञान बनाकर यही उद्यम करना चाहिए कि हममें वीतरागताका आधिक्य प्रकट हो। यद्यपि बहुत-बहुत प्रकारके साधन ऐसे लगे हुए रहते हैं कि जो विभिन्न हैं और जिनका मुकाबला और निपटाराका सुलझेरा करना भी कठिन होता है, फिर भी सम्यक्त्वके माहात्म्य से यथासमय सुलझेरा हो ही जाता है।

रागका विषय परपदार्थ—भैया! सच बात तो यही है कि इस जीवको जितने भी राग लगते हैं वे सब परपदार्थोंमें ही तो लगते हैं। निज पदार्थमें कहाँ राग है? कदाचित् कोई जीव निजपदार्थमें भी राग करे तो जब तक वह निज पदार्थकी पर-जैसी शकल बनाये

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहता है तब तक राग रहता है। जैसे मैं अपनी करुणा करूँ, अपना काम साधूं, अपने आपमें ही रूप बनाता है तो जिस समय यह रूप बनाता है उस समय इस जीवको जो सहज ज्ञायक-स्वरूप है, अपने वह लक्ष्यमें नहीं है और इस निजको अन्य-अन्यरूपमें लक्ष्यमें लिए है तब इसकी ओर राग है। शुद्ध परमार्थ निजस्वरूप ज्ञात हो तो वहाँ राग नहीं रहता, किन्तु राग-रहित अवस्था होती है। समता और स्वास्थ्यभाव वहाँ प्रकट होता है।

खुदकी बेसुधीमें बाह्यविडम्बना—बाह्यपदार्थोंका समागम, ये कहीं मुझमें राग अथवा उपद्रव उत्पन्न नहीं कर रहे हैं, यह मैं ही खुद अपने स्वरूपकी संभालमें न रहकर रागवश अन्य पदार्थोंको अपने सुखका साधन समझकर हम उनमें राग किया करते हैं। सच पूछो तो जिस शरीरसे हम आप राग रख रहे हैं यह शरीर क्या है? इन्द्रियोंका समूह ही तो है। यह सारा शरीर जो कुछ दिख रहा है, जो कुछ भी छूनेमें आता है यह सब स्पर्शनइन्द्रिय ही तो है। यह ऊपरकी त्वचा स्पर्शनइन्द्रिय है और यदि यह त्वचा अलग हो जाय और यह मांसका खण्ड ही ऊपर रहे तो क्या यह मांसखण्ड स्पर्शनज्ञानका काम नहीं करता? वह भी स्पर्शन इन्द्रिय है। इस मांसको भी थोड़ा काटकर निकाल ले तो अन्दर जो कुछ है, क्या वहाँ स्पर्शनका बोध नहीं होता? क्या है यह शरीर? स्पर्शनइन्द्रियका कितना बड़ा विस्तार है इस देहमें? शेष चारइन्द्रियोंका तो बहुत-सी छोटी जगहमें स्थान है और इस स्थानमें भी स्पर्शनइन्द्रिय तो बनी हुई ही है, उसके भीतर किस प्रकारकी ये गुप्त अन्य इन्द्रियाँ पड़ी हुई हैं?

इन्द्रियोंमें ज्ञानानन्दस्वरूपकी बाधकता—ये इन्द्रियां हमारे सुखकी और ज्ञानकी साधन बन रही हैं, पर वस्तुतः ये हमारे सुख और ज्ञानकी बाधक हैं, हमारी सहजनिधिका विघ्न करने वाली हैं, किन्तु ऐसे बन्धनकी स्थितिमें जो कुछ ज्ञान और सुख पानेके लिए निमित्तरूप सुविधा मिली है यह मोही जीव इसी कारण इन इन्द्रियोंमें आसक्त हो जाता है। इन इन्द्रियों को आचार्यदेवने हतक शब्दसे प्रयोग किया है। हतक एक अपशब्द है। हतक मायने हैं हत्यारा अथवा नाशका मिटा। ये हत्यारी इन्द्रियां नाशकी मिटी, इन इन्द्रियोंमें इस मोही जीवका अनुराग पहुंच रहा है और इस कारण हमारे साधनभूत बाह्य अर्थोंमें भी अनुराग पहुंचता है। तब हमारा कर्तव्य यह है कि इन इन्द्रियोंसे भिन्न ज्ञायकस्वरूप निज अंतस्तत्त्वका अनुभव करें। यों भेदविज्ञान करके निज अभेद ज्ञान द्वारा इन समस्त संकटोंको दूर करें और वीतरागताका आदर करें। इन समस्त शास्त्रोंका तात्पर्य वीतराग भाव ही है। ऐसा जानकर वैराग्यकी ओर अपना उद्यम होना चाहिए।

वीतरागभावकी अनुगम्यमानता—मोक्षमार्गका प्रधान साधनरूप यह वीतरागभाव व्यवहार और निश्चयके अविरोधपूर्वक ही जो अनुगम्यमान होता है, विज्ञात होता है, बर्तनामें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आता है वह वीतरागभाव इष्टसिद्धिके लिए होता है । इस मोक्षमार्गी जींवका इष्ट है मोक्षकी प्राप्ति । मोक्षकी प्राप्तिका कारण है वीतरागभाव । वीतरागभाव उनके ही प्रकट होता है जो निश्चय अथवा व्यवहारनयमें किसीका एकान्त पक्ष नहीं रखते, और दोनों नयोंका विरोध न करके जो परखमें आता है, जो परिणतिमें आता है ऐसा वीतरागभाव मोक्षमार्गका कारण है । अब इस व्यवहारनयका और निश्चयनयका अविरोध कह रहे हैं और किस ढंगसे इस मार्गमें चलना चाहिए, इसका वर्णन कर रहे हैं ।

भिन्न साध्यसाधनभावके प्रदर्शनकी आवश्यकता—सबसे प्रथम जो प्राथमिक जन हैं, जो इस कल्याणमार्गमें प्रवेश करने वाले हैं वे पुरुष व्यवहारनयके बलसे भिन्न साध्यसाधनका आलम्बन लेकर सुखपूर्वक इस तीर्थमें प्रवेश कर सकते हैं । जिन जीवोंको अनादिकालसे अब तक भेदकी ही बुद्धि लग रही है, भेदमें ही वासना बनी रही है और अनुकूल भेदमें भी नहीं, किन्तु अनाप-सनाप जैसा चाहे भेदमें जिनकी बुद्धि लग रही है ऐसे जनोंको यदि प्रथम ही अद्वैत अखण्ड चैतन्यस्वभावका उपदेश दे और उसके ही आलम्बनके लिए अनुरोध करें तो उनसे क्या बनेगा ? जो अब तक पंचेन्द्रियके विषयोंकी ओर रत रहे आये, इतना विपरीत भेद में बढ़ गये, अपनेसे अत्यन्त भिन्न देह विभाव आदिको अपनाते रहे, उतना अत्यंत अभेद वाले पदार्थोंमें जो जुड़ते रहे, ऐसे लोगोंको प्रथम तो भिन्न साध्य और भिन्न साधनका उपदेश दिया जाता है ।

भिन्न साध्यसाधनभावका समवलोकन—देखिये मुक्ति चाहिए हो तो जो मुक्त हुए हैं ऐसे देवोंकी श्रद्धा रक्खो । उस मुक्तिका उपाय जिन ग्रन्थोंमें बताया है उन ग्रन्थोंमें कोई शंका न करो । विनयपूर्वक उन ग्रन्थोंका अध्ययन करो, और जो मुक्तिके मार्गमें लग रहे हैं ऐसे साधु संतोंकी सेवा करो । यों भिन्न साधनोंका अवलम्बन कराया जाता है और हुआ भी सभीको ऐसा । जो पुरुष आज निश्चयनयकी कथनीमें अनुरञ्जित हैं अथवा निश्चयनयकी ओर झुकाव जिनका आ गया है उन पुरुषोंने क्या जन्म लेनेके बाद ही यही रुख एकदम पा लिया था ? कैसी प्रवृत्ति, कैसा व्यवहार रहा, उससे यह स्पष्ट है कि इन प्राथमिक पुरुषोंको सर्व-प्रथम इस भिन्न साध्यसाधनका आलम्बन लेना पड़ता है तब वे सुगमतासे सुखपूर्वक तीर्थमें अवगाह लेते हैं अर्थात् इस धर्मको धारण करनेके पात्र बनते हैं ।

व्यवहारावलम्बन—अब धर्मविधिकी इस बातको स्पष्ट करते हैं । यह तत्त्वश्रद्धा करने योग्य है और यह तत्त्वश्रद्धाके योग्य नहीं है । यह श्रद्धान करने वाला है और यह श्रद्धान है, यह अश्रद्धान है, यह ज्ञेयपदार्थ है, यह ज्ञाता है, यह ज्ञान है, यह अज्ञान है, यह आचरणके योग्य नहीं है, यह आचरण किया गया है, यह कर्तव्य है, यह अकर्तव्य है, यह करने वाला है, यह किया जा रहा है आदिक विभावोंका जब अवलोकन होता है तो उससे इसमें एक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उत्साह जगता है। प्राथमिक पुरुष कबसे मोक्षमार्गका उत्साह प्राप्त करता है ? जबसे वह इस ज्ञानमार्गमें चला और भिन्न-भिन्न रूपसे तत्त्वका निर्णय करने लगा तबसे इसे मोक्षमार्गमें उत्साह बढ़ता है, यही हुआ ना भिन्न साध्यसाधनभाव, व्यवहारनयका आलम्बन। यह तो प्राथमिक पुरुषकी प्रारम्भकी कहानी है, लेकिन क्या इतने तक ही वह फंसा रहे ? यदि यह साथ ही रहता है तो उसे सफलता न मिलेगी तब धीरे-धीरे वह मोहमल्लका उन्मूलन करता है।

आत्मानुभूति और मोहमल्लमर्दन—भैया ! अपने ही अनुभवसे ऐसा निर्णय करो कि जिस देहमें यह मैं प्रतीति कर रहा हूं, यही मैं हूं, ऐसा मिथ्या श्रद्धान करने वाले पुरुषको जब कभी भी सम्यक्त्व प्राप्त करनेका आरम्भ होगा, यह मैं नहीं हूं—इस देहसे यों हटेगा तो सर्व प्रथम तो यह जानकारी आयगी ही कि इस शरीरका ध्यान ही न करके जो शुद्ध सहज आत्म-तत्त्व है उस आत्मामें रति बन जाय, अनुभूति हो जाय। आत्मोन्नतिका, मोहमर्दनका यह काम धीरे-धीरे होनेका है। जैसे किसी मल्लोंकी लड़ाईमें जहाँ मल्लयुद्ध हो रहा हो तो कोई भी मल्ल दूसरेको गिराकर उसे धीरे-धीरे उन्मूलन करता है। जैसे कुश्ती वाले लोग जानते ही हैं, इसी तरह इस ज्ञानका और इस मोहका आज यह कलह हुआ है अर्थात् मोह ज्ञानपर हामी जो बना हुआ था आज ज्ञानको सुध जगने लगी है, और यह ज्ञान मोहमल्लको हटाना चाहता है तो वह ऐसी ही भेदभावनासे हटाकर इस मोहमल्लका उन्मूलन करता है। किसी कारणसे और प्रमादके आधीन होकर अपने आत्माको शिथलित भी कर देता है। जैसे गृहस्थोंमें यह अवस्था गुजरती है, कभी धर्मकी सुध हुई, कभी फिर ममतामें रम जाता है, कभी खेद करते, धर्मके लिए उत्साह जगता, फिर अधिक देर तक धर्म नहीं टिक पाता है। उसी ममतामें फिर पग जाते हैं। ऐसे ही प्राथमिक जनोंमें भी हो क्या रहा है कि मद और प्रमादके आधीन हो जाते हैं। मद मायने अहंकार।

गतियोंमें कषायोंकी मुख्यताका विश्लेषण—चारों गतियोंके कषायोंकी पृथक्-पृथक् मुख्यता है। नरकगतिमें क्रोध कषाय प्रधान है, तिर्यञ्चगतिमें मान कषाय प्रधान है। तभी देखा होगा कि बिल्ली कैसा मायाचारसे चूहेपर झपटती है और अन्य-अन्य भी पशु अपना अपना योग्य मायाचार रखते हैं ? हम आप नहीं समझ पाते उनकी बात। लेकिन प्रकृति ऐसी है तिर्यञ्चगतिके जीवोंकी कि उनमें मायाचारकी प्रधानता है। देवगतिमें लोभ कषाय की प्रधानता है और मनुष्यगतिमें मान कषायकी प्रधानता है। देखलो इस मान कषायके पीछे अपना तन, मन, धन सर्वस्व होम सकते हैं। मनुष्योंमें मान कषायकी प्रधानता है, यह बात आँखों दिख भी रही है लोकव्यवहारमें। तो यह मनुष्य कभी मदके आधीन हो जाता है और कभी प्रमादके आधीन हो जाता है, तब आत्माका अधिकार इसके शिथिल होने लगता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानीकी प्रचण्ड दण्डनीति—आत्माधिकार जिसका शिथिल होने लगता है ऐसे आत्मा को न्यायपथमें लगानेके लिए प्रचंड दंडनीतिका प्रयोग भी बताया गया है उसे वह करता है। खाना छोड़ दिया। आज भाव आया कि अमुक चीज खानी है तो क्यों आया ऐसा भाव ? लो आज यह चीज ही छोड़ दिया। यह क्या है ? आत्माधिकार जिसका शिथिल होने लगता है उसके लिए यह दंड है और जितने भी व्रत हैं, नियम हैं ये सब क्या हैं ? ये सब दण्ड-स्वरूप हैं, इतना ही तो फर्क है। अज्ञानी जन तो ऐसा समझकर कि मैं व्रती हूं, मेरा यह करनेका काम है ऐसा उत्साह रखकर किया करते हैं, किन्तु ज्ञानी जन ऐसा सोचते हैं कि मैं तो ज्ञानस्वरूप हूं, उसे नहीं पा रहा हूं अतएव उसमें विरोध डालने वाले विषयकषायोंको हटानेके लिए मैं यह प्रयत्न कर रहा हूं और इसे मैं एक दण्ड समझता हूं। तो जब आत्मा-धिकार शिथिल होता है तब दंड नीतिका यह जीव प्रयोग करता है। फिर बार-बार दोषोंके अनुसार प्रायश्चित लेता है।

स्वरूपच्युतिके अपराधका प्रायश्चित्त—देखो भैया ! अपने आपको जिसने प्रायश्चित्त दिया है ऐसा इस ज्ञानी पुरुषमें व्यवहारनय और निश्चयनय इन दोनोंका कैसा अविरोध चल रहा है ? दोष तो इस जीवके लगते रहते हैं और ज्ञानी पुरुष उन दोषोंका दंड भी लेता रहता है। संयममार्गणामें प्रथम दो संयम कहे गए हैं—सामायिक और छेदोपस्थापना। छठे गुणस्थान में तो ये दोनों खूब समझमें आते हैं कि वहाँ समतापरिणाम भी करता है और बराबर विचलित भी होता जाता है। लोगोंको देखकर उनको शिक्षा दीक्षा देकर किसी भी प्रकार जब फलित हो जाता है अपने उत्कृष्ट मनसे तो छेदोपस्थापना कर लेता है। उनमें कोई दोष ही बन गया, अपने नियमके विरुद्ध कार्य भी बन गया तो उसकी संभाल करता है।

छेदोपस्थापनाका अन्तर्मर्म—देखो भैया ! छठे गुणस्थानमें तो सर्वविदित है कि छेदोपस्थापना हो गई, किन्तु ७वें, ८वें और ९वें गुणस्थान तक जहाँ अनिवृत्तिकरण परिणाम हो गया, एकसा ही जहाँ सबका परिणाम रहता है वहाँ भी छेदोपस्थापना बताया है। इसका मतलब क्या है ? इसका तात्पर्य यह है कि यह साधु रागद्वेषको त्यागकर समता-परिणाममें लगा है, शुद्ध ज्ञाताद्रष्टा रहें इस प्रयत्नमें लगा है। इस प्रयत्नमें लगनेके मायने ही यह हैं कि लगते हुएके बीच-बीच कुछ कुछ शिथिलता आती है और फिर उसको ज्योंका त्यों उपस्थित करता है। कोशिशमें लगना इसका अर्थ क्या है ? उसके साथ-साथ शिथिलता भी चलती रहती है और उस शिथिलताका परिहार भी चल रहा है उसे कहते हैं कि कोशिशमें लगा है। शुद्ध ज्ञाताद्रष्टा रहना यह बहुत उच्च कार्य है।

समतामें लगनेका पुरुषार्थ—पदार्थोंके केवल जाननहार रहें, वहाँ इष्ट अनिष्टकी कल्प-नाएँ न जगें, किसी भी प्रकारका सूक्ष्मरूपसे भी सुहावना और असुहावनाका भाव न बने, लो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अभी कुछ श्रमसा हो रहा था, अब विश्रामसा मालूम पड़ने लगा। इतना भी भेद जहाँ न जगे ऐसी केवल जाननहारकी स्थिति कितने उत्कृष्ट पुरुषार्थकी परिस्थिति है ? इस कामको करते हुए अबुद्धिपूर्वक जो समझमें नहीं आता ऐसी उस समताकी गलीसे कुछ-कुछ शिथिलताएँ होती हैं, त्रुटियां होती हैं तो पुनः फिर उस ही साम्यभावमें लगनेका जो प्रवर्तन है वह है छेदोस्थापना। यों कह लीजिए कि बराबर वह समतामें लग रहा है तो समतामें लगनेका जो प्रतिपक्ष यत्न है वह छेदोपस्थापना है, और जो समतामें लगा रहे वह सामायिक है।

आत्मसंस्कारका अधिरोपरग—शिवमार्गमें चलते हुए साधुके शेष रागके कारण दोष लगते रहते हैं, उन दोषोंका वह प्रायश्चित देता है और सदैव उस समतापरिणाममें ठहरनेके लिए उद्यमी होता है। ऐसे इस आत्माके हुआ क्या कि भिन्नविषयक श्रद्धान ज्ञान और आचरणके द्वारा इसने एक संस्कार प्राप्त किया। जैसे एक मोटे रूपमें ही देखिये—हम आप लोग बचपनसे ही किस-किस प्रकारसे अपने संस्कारोंको बनाते चले आये हैं। आज इतनी धर्मरुचि हुई है, भक्ति है, तन, मन, धन, वचन सब कुछ धर्मके लिए न्यौछावर कर सकते हैं, इस तरहकी जो आज तैयारी है उस तैयारीसे पहिले जो-जो संस्कार बने हैं, कबसे बने हैं, किस प्रकार बने हैं उनपर दृष्टि डालें तो वे विभिन्न प्रकारकी स्थितियोंसे बने हैं। ८-१० वर्षकी उम्रमें किस प्रकारसे संस्कार जमते थे, अब बड़ा होनेपर किस प्रकारके संस्कार जमने लगे ? कुछ ज्ञान विशेष जगनेपर इस आगमके बलसे किस प्रकार संस्कार अधिरोपित करने लगे। इन सब भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियोंमें इसने संस्कारोंको ही दृढ़ किया है तो यह मोक्षमार्गी जीव भिन्नविषयक श्रद्धा याने भेदरूप सम्यग्दर्शन, व्यवहारसम्यग्दर्शन, व्यवहारसम्यग्ज्ञान और व्यवहार सम्यक्चारित्रसे अपने संस्कार दृढ़ करता है।

भिन्न साध्यसाधनभावका उपयोग—अब जैसे धोबी मलिन वस्त्रको सोडा, खार, साबुन इत्यादि भिन्न साधनोंके द्वारा स्वच्छ करता है ऐसे ही यह प्राथमिक मोक्षमार्गी जीव भिन्न साध्य साधनोंका व्यवहारनयका आलम्बन करता है और उस भिन्न साध्यसाधनभावके द्वारा गुणस्थानोंपर चढ़नेकी परिपाटी बनाता है, विशुद्ध होनेका यत्न करता है। फिर उन ही मोक्षमार्गके साधक जीवोंके निश्चयनयकी मुख्यतासे फिर भेदस्वरूप परावलम्बन व्यवहारनय भिन्न साध्यसाधनका अभाव हो जाता है। जैसे धोबी सर्वप्रथम तो साबुन, सिला, पानी ऐसी भिन्न-भिन्न चीजोंका आलम्बन लेकर वस्त्रको धीरे-धीरे उज्ज्वल करनेका उद्यम करता है और इस भिन्न साध्यसाधन द्वारा इस वस्त्रमें कुछ स्वच्छता आयी तो उसके प्रकट होनेके बाद फिर उसकी ही स्वच्छता बढ़ाता है ऐसे ही उपायोंसे। ऐसे ही व्यवहारनयका आलम्बन लेकर देव, शास्त्र, गुरुकी भक्ति नाना प्रकारके तपश्चरण इन भिन्न साधनोंके द्वारा आत्मामें एक विशुद्धि और स्वच्छताको प्रकट करता है और जब स्वच्छता जगने लगी तब फिर भी यह यहीं अपने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्मामें ही अपने आपको साधन बनाकर अपने आपके ही उपयोग द्वारा अपने आपमें ही उस साध्यका विकास करनेका यत्न करता है।

व्यवहारके अविरोधपूर्वक निश्चयमें प्रगति—भैया! आत्मशुद्धिमें अन्तिम प्रयोग तो उपान्तिम प्रयोग तो यह निश्चयनयका किया इसने, किन्तु प्रथम अवस्थामें व्यवहारनयका आलम्बन लेकर यह जीव बढ़ा था तब यह उसी रजककी नाई धीरे-धीरे विशुद्धिको प्राप्त करके निश्चयनयका यह मोक्षमार्गी आलम्बन लेता है। जैसे उस रजकको वस्त्रमें सफेदी लाने के लिए बाह्य साधनोंका आलम्बन लेना पड़ता है ऐसे ही यह मोक्षमार्गी निश्चयनयका आलम्बन लेता है। इन भिन्न साध्यसाधनोंके उपायसे जाना किसको था? इस तत्त्वस्वरूप आत्माको। अब उन समस्त क्रियाकाण्डोंसे छूटा भी है तो वहाँ विश्रान्ति लेता है और उस स्थितिमें निस्तरंग परमचैतन्यस्वभावी इस भगवान आत्मामें विश्राम लेता है।

दृष्टान्तपूर्वक निश्चयकी व्यवहारपूर्वताका प्रतिपादन—जैसे आप लोग सभी जन जो मंदिरमें ऊपर आते हैं, सीढ़ियोंसे चढ़कर आते हैं, सीढ़ियोंपर चढ़नेका काम कितना पड़ा हुआ है यह क्षणभरमें वह जान लेता है और उन सीढ़ियोंपर चढ़नेका उद्यम करता है, पर उस सीढ़ीसे आनेपर उसे अन्तरंगमें कुछ विश्राम मिलता है या नहीं? सबपर यह बात गुजरती है। पहिली सीढ़ीपर पैर रखते समय जो मनःस्थिति है और अन्तिम सीढ़ीपर आनेपर जो मनःस्थिति है उसमें विश्रामका कितना अन्तर है? ऐसे ही व्यवहारनयके बलसे भिन्न साध्यसाधन भाव द्वारा जो उद्यम किया उस परिस्थितिमें और उस उद्यमके फलमें जो एक अद्वैत अखण्ड है, शाश्वत चैतन्यस्वभावकी दृष्टिकी पदवीमें आया, आखिरी मंजिल की सीढ़ीके पास आया उस समय इसको एक परमविश्राम उत्पन्न होता है।

यथार्थ ज्ञानके बिना धर्मका अनाश्रय—यहाँ यह चर्चा चल रही है कि यह बहिरङ्ग भाव निश्चय और व्यवहारनयके अविरोधपूर्वक जो प्राप्त किया गया है, अनुगम्यमान है वह वीतराग भाव मोक्षका मार्ग है। वीतराग भाव यथार्थज्ञानके बिना हो नहीं सकता। वीतरागता का और तात्पर्य ही क्या है? ज्ञान ज्ञानमात्र रह जाय, उसके साथ रागादि विकल्पोंका कलंक नहीं हो, यही तो वीतरागभाव है। जिस पुरुषके यथार्थ ज्ञान नहीं हुआ अर्थात् वस्तुके स्वतंत्र स्वरूपका परिचय नहीं हुआ, अपने सहजज्ञानानन्दस्वरूपका भान नहीं हुआ वह अपने उपयोग को शुद्ध तत्त्वपर कैसे टिका सकता है? जब शुद्ध तत्त्वपर उपयोग नहीं टिक सकता तो यह उपयोग कभी धर्मके नामपर घर परिवारको भी बाहरसे छोड़ दे तो भी अन्तरङ्गमें उस स्थितिमें हो रहे विकल्पकी अपनायत न छोड़ सकनेके कारण धर्मका पालन नहीं कर रहा है, वह तो अब भी अज्ञानी है। आजकल जो जहाँ कहीं भी त्यागवेशियोंकी विडम्बना हो रही है उसका कारण यही है कि ज्ञानस्वरूपका आत्मतत्त्वका परिचय तो हुआ नहीं और किसी विव-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शताके कारण या अपने धर्मात्मापनके विकल्पकी अपनायतके कारण घर परिजन आदि छोड़ तो दिये हैं, किन्तु समताके साधनभूत अन्तस्तत्त्वकी ओर झुकाव हो नहीं पाता, तब विविध बाह्यदृष्टियोंमें फंसकर पूर्ववत् बेचैन ही रहता है, भले ही बेचैनीकी पद्धति भिन्न हो गई हो, ऐसी बेचैनीमें विडम्बना बनती ही है।

यथार्थज्ञानके बिना कषायोंकी अभिवृद्धि—यथार्थ ज्ञानके बिना वीतरागता आ ही नहीं सकती। यथार्थज्ञानसे शून्य पुरुषोंका व्यवहारधर्मपालन कषायोंका कारण बन जाता है। धर्मपालन तो कषायोंके अभावके लिये होता है। कोई पुरुष धर्मक्रियायें करके अपनेको सबसे महान् समझ ले और ऐसी महत्ताका आदर परसे न मिले तो क्रोधमें जल भुन जायगा। तो लो यथार्थज्ञान बिना यह होती है हालत, देख लो। यथार्थ ज्ञानशून्य विद्यावोंके अधिकारियों का भी यही हाल है। धर्मपालन, विद्यार्जन भी मदके लिये बन जाय, अन्य पुरुषोंको तुच्छ दृष्टिसे देखनेका हेतु बन जाय तो वह धर्म कहाँ रहा? यथार्थज्ञानशून्य पुरुष धर्मपालनमें माया-चार भी करेंगे। अकेले बैठे जाप दे रहे तो शिथिलमुद्रामें, और कोई दो-एक आदमी वहाँसे गुजरें तो अकड़कर बैठ जायें। अकेले स्तवन पूजन कर रहे हैं जल्दी-जल्दीकी भाषामें, और कोई दो-एक आदमी वहाँ दर्शनार्थी आ जायें तो मधुर स्वरसे गाने लगे। यह सब मायाचार है तो धर्मपालन कहाँ रहा? धनलाभ, विजयलाभ, संतानलाभ आदिके ख्यालसे पूजा भक्ति यात्रा आदि किये जा रहे हों तो बतलाइये हृदय देखकर कि धर्मपालन कहाँ हुआ? वास्त-विकता तो यह है निरपेक्ष निजस्वभावका परिचय न हुआ हो तो उपयोग अन्तस्तत्त्वमें कैसे टिके? यथार्थज्ञान बिना वीतराग भाव नहीं हो सकता।

यथार्थ ज्ञान—ज्ञानोंमें ज्ञान वही यथार्थ है जो ज्ञान ज्ञानस्वरूपका जानन रखे। जाननस्वरूपका जानन वही ज्ञान रख सकता है जो ज्ञान समग्र वस्तुओंके स्वतन्त्र स्वरूपका जानकार हो चुका हो। ये दिखनेमें आने वाले सब पदार्थ व समझमें आने वाले ये सब चेतन, पुरुष व सभी पदार्थ अपने-अपने प्रदेशोंमें ही परिणमते हैं। किसी भी पदार्थका गुण, परिणमन, क्रिया, प्रभाव कुछ भी तो अन्य पदार्थमें नहीं जाता है। किसी अन्यसे मेरेमें क्या आ सकता है? न किसी अन्य पदार्थसे मेरा सुधार है, न किसी अन्य पदार्थसे मेरा बिगाड़ है। प्रत्येक पदार्थ अपनेमें अपनी परिणतिसे परिणमता रहता है, जिसका फल अस्तित्वका बना रहता है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ किसी पदार्थसे आशा रखना अज्ञानका प्रभाव है। यह तो स्थूल बात कही गई है। दिखने वाले पिण्डोंमें भी जो एक-एक परमाणु हैं वे भी प्रत्येक स्वतन्त्र पदार्थ हैं। वस्तुवोंको देखते ही वहाँ स्वतन्त्रताका दर्शन हो जाय, ऐसी उपयोगकी शुद्ध वृत्ति बने यह ज्ञान ही परमार्थतः ज्ञान है।

क्लेश और क्लेशसे छूटनेका उपाय—इस संसारमें समस्त स्थानोंमें, समस्त दशाओंमें,

Version 2

http://sahjanandvarnishastra.org/

सर्वकालोंमें, संसारके सब जीवोंमें क्लेश ही क्लेश नजर आता है। उस क्लेशसे छुटकारा होने का नाम निर्वाण है। जीवकी दो ही प्रकारकी स्थितियां हैं। कोई जीव संसारी हैं, कोई जीव मुक्त हैं। संसारी सभी खेदमय हैं और मुक्त जीव सभी आनन्दमय हैं। जिनको निवृत्तिका आनन्द पानेकी अभिलाषा है उनको केवल यही करना है—समस्त परपदार्थोंके सम्बन्धमें मोह राग और द्वेष इनका त्याग करना, आनन्द पानेका और अन्य कुछ उपाय ही नहीं है सिवाय इसके। प्रथम मोह छोड़ें पश्चात् रागद्वेषका त्याग करें तो निर्वाण मिलेगा। वह मोह रागद्वेष कैसे मिटे, इसका जो उपाय है उस ही का नाम धर्म है। धर्मका पालन करनेसे मोह रागद्वेष दूर होते हैं और आत्माकी सहज सत्य अवस्था प्रकट होती है।

धर्मपालनकी पद्धति—इस ही धर्मके प्रयत्नको कुछ लोग तो आत्माके परिचयसे शुरू और कुछ लोग बाहरी क्रियाकांडोंसे शुरू करते हैं। दो पद्धतियोंसे प्रयत्न करने वाले लोग धर्मका पालन करने वाले हैं। आचार्यदेव यह कह रहे हैं कि न तो केवल व्यावहारिक क्रिया-कांडोंसे शान्तिका पथ मिलेगा और न केवल ऊपरी ढंगसे आत्मामें निश्चयकी बात कर-करके शान्तिका पथ मिलेगा। रही यह बात कि कोई श्रद्धापूर्वक, अपने आपके झुकाव सहित यदि आत्माका परिचय पाये तो क्या उसे भी शान्तिपथ न मिलेगा? मिलेगा। किन्तु उसकी परिणति किस प्रकार बन जायगी अथवा बनना ही पड़ती है, इसपर भी तो दृष्टिपात करें। जो अपने शुद्ध अन्तस्तत्त्वका प्रेमी है, जैसे वह शुद्ध अन्तस्तत्त्व प्रकट हो उस प्रकारसे उसके मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति होगी। संसारी जीवोंमें मन, वचन और काय तो लगा ही है। अज्ञानी मनुष्य हों उनके भी मन, वचन, काय हैं और ज्ञानी हों उनके भी मन, वचन, काय है। अब जैसी भीतरी भूमिका है, जैसा प्रकाश है, जैसी योग्यता है उसके माफिक ही तो मन, वचन, काय चलेगा। तो ऐसे ज्ञानी संत पुरुषके मन, वचन, काय असंयमका प्रश्रय न देने वाले ढंग से चलता है तब निश्चय और व्यवहार दोनोंकी संगति वहाँ हो जाती है?

व्यवहारावलम्बियोंकी परिस्थिति—जो केवल व्यवहारनयका ही आलम्बन करके धर्मपालनकी दिशामें बढ़ते हैं उनकी दृष्टि किस तरह होती है? वे भिन्न साध्यसाधन भावको देखते हैं और उस ही प्रकारसे आचरण करते हैं। बस केवल व्यवहारनयके आलम्बन करने वालेका यह दोष है। भले ही उनके चित्तमें यह बात रहती है कि मुझे निर्वाण पाना है और उस निर्वाण पानेके लिए हम तपश्चरण कर रहे हैं, भक्ति कर रहे हैं अथवा ज्ञान बढ़ा रहे हैं, लेकिन इस बोधमें भी उनके चित्तमें साध्य भिन्न है और साधन भिन्न है। उन्हें यह पता नहीं कि हमें निर्वाण पाना है तो निर्वाण हमारा ही स्वरूप है, ऐसा पता नहीं है, किन्तु जैसे व्यवहारी जन कहते हैं कि हमें शिखरजी जाना है, दिल्ली जाना है ऐसा कुछ भिन्न स्थान है जिस स्थानके प्राप्त होनेपर सुख मिलता है। केवलव्यवहारीजनोंको अपने हृदयमें यह स्पष्ट नहीं है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कि वह निर्वाण मेरा ही स्वरूप है, और निर्वाण क्या पाना अथवा आगे पानेको क्या करना, यह स्वयं निर्वाणस्वरूप है। निर्वाण अवस्थामें जो प्रकट होता है वह कुछ नई बात नहीं होती है। जो स्वरूप है, जो स्वभाव है बस वही प्रकट हो गया, कोई नई बात नहीं बनायी जाती। इस प्रकारका अभिन्न साध्यका भी निर्णय नहीं है व्यवहारावलम्बियोंके और अभिन्न साधनका भी निर्णय नहीं है। अगर निर्वाण पाना है तो उस देहको तपस्यामें लगाओ। अधिक उपवास हो जाय, अधिक कायक्लेश हो जाय इसी विधिसे तो निर्वाण पा लिया जायगा। भगवानका यही तो आदेश है कि तपश्चरण करो और मुक्ति पावो।

विद्वत्ता होनेपर भी अन्तर्ज्ञानके अभावकी संभावना—कोई पुरुष ज्ञानमें विशेष बड़ा हो, किन्तु व्यवहारावलम्बी हो तो वह चर्चामें अभिन्न साध्यसाधनका वर्णन भी करेगा। जो लिखा है उसे पढ़ेगा नहीं क्या? उसे जब विवरणसहित समझानेको उद्यत होगा तो क्या उसको समझायेगा नहीं? फिर भी भिन्न साध्यसाधन भावका उसे परिचय नहीं हो पाता है। जैसे जिसने जिस स्थानको नहीं देखा है, मान लो अमरीका या अन्य देश। यद्यपि नक्शाके आलम्बनसे उसे ज्ञान है, वह दिशा बताता है, अनेक स्थल बताता है, लेकिन उतना स्पष्ट अवगम वह नहीं कर सकता है जितना कि वह कर सकता है जो देख आया है। यों ही समझिये कि जो व्यवहारका ही मात्र आलम्बन करता है वह भिन्न साध्य और भिन्न साधनको निरखनेका ही एक खेद मचाये रहता है। इस संसारी जीवको, जो ज्ञानी भी है, किन्तु मिथ्यादृष्टि है उसको निरन्तर खेद बना रहता है। इन्द्रिय विषयोंका सुख भोग रहा हो वहाँपर भी लगातार निरन्तर खेद है और इन्द्रियको न सुहाये ऐसे दुःखको भोगता हुआ भी वह निरन्तर खेद किए रहता है। अज्ञान अवस्थामें निरंतर खेद रहता है। कोई साताका खेद है, कोई असाताका खेद है, कोई ऐसा खेद है कि खुद समझमें ही नहीं आ रहा और कल्पनामें मौज मान रहा। कोई ऐसा खेद है कि वह खेद भी समझमें आ जाता है।

बहिर्दृष्टिमें खेदकी प्राकृतिकता—जिसने अपने आत्माके अन्तःस्वरूपका स्पर्श नहीं किया उसकी दृष्टि बाह्यपदार्थोंकी ओर रहती है और चूंकि जानने वाला है यह और इसके उपयोगमें जाननेमें आ रहे हैं परपदार्थ, तो भला बतलावो जिसकी एक टांग तो घरमें हो और एक टांग कोई बाहर खींच रहा हो तो उसकी क्या हालत होती है? उपयोग चूंकि स्वयंका स्वरूप है, इसलिए इसका एक पद तो यहाँ बना ही हुआ है, किन्तु उपयोगकी क्रियाके समय में जो इसका उपयोग बड़ा खिंचा जा रहा है तो ऐसा बाह्यकी ओर खिंचे जा रहे उपयोग वालेको चैन कहाँ है, निरन्तर खेद रहता है। तो जो अपने आनन्दप्राप्तिके लिए भिन्न साध्य और भिन्न साधनको देखा करते हैं वे पुरुष निरन्तर खेद पाते रहते हैं।

व्यवहारावलम्बीकी सम्यग्दर्शनके लिये प्रवृत्ति—व्यवहारावलम्बियोंकी क्या स्थिति

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बनती है इसको देखिये— आगममें बताया है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र यह मोक्षका मार्ग है तो इस व्यवहारावलम्बीको सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके नामपर इसमें प्रीति हुई है तब उसकी भी यह आकांक्षा रहती है कि हमारा रत्नत्रय निर्मल रहे और अपनी बुद्धि माफिक इस रत्नत्रयको निर्दोष करनेके लिए बड़ा प्रयत्न भी करता है, बार-बार धर्मादिक तत्त्वोंके श्रद्धानका अध्यवसाय बनाये रहता है। जैसे किसी बाईका यह नियम हो कि सूत्रजी भक्तामर जी सुनकर ही हम खाना खायें। उसके अर्थपर उसके तत्त्वपर कभी भी दृष्टि न जगे तो वहाँ यह काम पूरा करना है, कोई मिला बांचने वाला उससे सुन लिया, पढ़ना नहीं जानती, सो चौथे क्लासके लड़केको ही बैठा लिया, उस लड़केने कुछ बांच दिया। गलत-सलत बाँच दिया तो भी सुन लिया, पर इस महिलाको तो पूरा सन्तोष है कि हमने अपना नियम पाल लिया। किसी कार्यव्यासङ्गसे समय कम रह गया तो जाप भी दिया, सूत्रजी भी सुना। किसीको सूत्रजी पढ़नेको बैठा दिया तो, जाप भी वह महिला देती जा रही और सुनती भी जा रही। किसी भी प्रकार यह चित्तमें आना चाहिए कि हमने अपने संयमको निर्दोष रूपमें पाला। ७ तत्त्वोंकी कथनी सुनना, सप्त तत्त्वोंके चिन्तनमें अपना परिणाम लगाना और उससे ऐसा अनुभव करते रहना कि हम अपने मोक्षमार्गको भली प्रकार निभाये रहें। जो करने योग्य काम है वह तो कर लिया, जब कि एक तत्त्वज्ञ पुरुषको मूलमें यह श्रद्धा रहती है कि मेरे करने योग्य तो यह भी काम नहीं है। दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी जो प्रवृत्तियां हैं वे भी मेरे करनेके काम नहीं हैं। तो फिर क्या है ? कुछ न करें कुछ तरंग न उठे, कुच कल्पनाएँ न चलें, मन, वचन, काय ये तीनों विश्रांत हो जायें, ऐसी एक सहज स्थिति बने, वह है आत्मा की वृत्ति। तत्त्वज्ञानीको इस ओर प्रेम है तो व्यवहारावलम्बीको इन बाहरी दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी क्रियावोंके पालनेमें प्रेम है। फल यह होता है कि आनन्द तो आनन्दकी पद्धतिसे ही मिलेगा ना, किन्तु इन मुग्ध जीवोंकी दृष्टि है बाहर, इस कारण इन बाहरी प्रयत्नोंमें वे निरन्तर खेद-खिन्न रहते हैं। सम्यग्दर्शनके प्रसंगमें, तत्त्वकी चर्चा सुननेमें, जाननेमें, चर्चा करनेमें अपना परिणाम लगाये रहते हैं जिससे हमारा सम्यग्दर्शन पुष्ट हो।

व्यवहारावलम्बीकी सम्यग्ज्ञानके लिये प्रवृत्ति—सम्यग्ज्ञानके प्रसंगमें चूँकि यह भाव होता है कि हमारा सम्यग्ज्ञान भी सही बने तो बहुत शास्त्रोंका अध्ययन करता है। न्याय-शास्त्र, अध्यात्मशास्त्र, करणानुयोग, ऊँची-ऊँची कथनियोंको लाँघ जाता है। हमारा ज्ञान बने। जैसे एक कथानक है कि रावणके युद्धके समय रामकी ओरसे जो वानरसेना थी उसने समुद्रको लांघ दिया। तो समुद्रको लांघने वाले बन्दरोंसे यदि यह पूछा जाता कि बतलावो तो बानरो! इस समुद्रमें कितने रत्न हैं और कैसे-कैसे रत्न पड़े हैं ? तो उन बानरोंको क्या पता ? वे तो लांघ गए। उन्होंने भीतर घुसकर खोजा कुछ नहीं। ऐसे ही श्रुतज्ञानके नामपर, सम्यग्ज्ञानके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

नामपर अनेक प्रकारके शास्त्रोंका व्याख्यान खूब रटा, खूब सुना, अध्ययन किया और कुछ भी प्रसंग आये पन्ने भी याद हैं, इस पेजपर यह लिखा है। इतना बड़ा ज्ञान पैदा करके भी नाना प्रकारके विकल्पजालोंमे इसकी चैतन्यवृत्ति अब भी कलुषित चलती रहती है।

दृष्टिविकास—तत्त्व तो एक खोजकी चीज है। जैसे किसी कार्डमें जंगलके वृक्ष बने हैं और इस ढंगसे बने हैं कि जहाँ जगह खाली है उस खाली जगहमें गधा, शेर, पक्षी ये दिखने लगते हैं, लेकिन ऐसी किसीने दृष्टि न बनायी हो और ऐसा न परिचय कर पाया हो तो वह कार्डको देखकर यही कहेगा कि इसमें तीन पेड़ खड़े हुए हैं, उन्हें शेर पक्षी वगैरह कुछ नहीं दीखा। किन्तु एक बार बता दिया जाय कि देखो यह है शेर, फिर तो कार्ड हाथमें लेकर देखे तो तुरन्त शेर दिखेगा, ऐसे ही जिसने अपने उस सहज चैतन्यप्रकाशका अनुभव नहीं किया वह तो समस्त योग प्रवृत्तियोंमें बाहरी-बाहरी बातें ही निरखेगा और जिसने अपने अन्तस्तत्त्वका परिचय पाया है वह प्रत्येक प्रसंगोंमें उस अन्तस्तत्वकी बात सामने रखेगा।

प्रत्ययके भेदसे बहिरंगमें भेद—यह व्यवहारावलम्बी पुरुष सम्यग्ज्ञानके नामपर बहुत-बहुत ज्ञानार्जन भी करता है और सम्यक्चारित्रके नामपर मुनियोंको जो चारित्र तपस्या बतायी हैं उनमें प्रवृत्ति करके, अनेक क्रियायें करके अपनेको मोक्षमार्गी समझता है। हमने निर्वाणका मार्ग पाया है, हम ठीक कर रहे हैं। अन्तरङ्गमें कैसा खेद चल रहा है वह खेद तो और खतरनाक है कि जिस खेदका पता भी न पड़े और खुद सुखरूपमें सन्तोषरूपमें समझ लिया जाय तो उस खेदका तो संसारपरिभ्रमण ही फल है। वह कभी किसीमें रुचि करता है, कभी किसीमें रुचि करता है। कैसे चलना, कैसे बैठना, कैसे खाना, कहीं कुछ गल्ती न हो जाय, देखिये ये सब बातें ज्ञानी पुरुषके भी चलती हैं और इन्हींको अज्ञानी भी करता है, किन्तु ज्ञानी पुरुष अपने लक्ष्यसे परिचित है तो उसका यह विशुद्ध शुभोपयोग कहलाता है और इस शुभोपयोगके प्रसादसे वह परम्परया मोक्ष प्राप्त कर लेता है। ज्ञानीका व्यवहारावलम्बन परम्परया मोक्षको देने वाला है और अज्ञानी जीवका व्यवहारावलम्बन संसारमें परिभ्रमण कराने वाला है। भले ही देव बन गया तो वहाँ पर भी क्लेश सहेगा और वहाँसे च्युत होकर मनुष्य पशु आदि बनकर वहाँ पर भी क्लेश सहेगा।

अज्ञानीकी विभिन्न रुचियोंका कारण—जिसको अपने आत्मस्वरूपका परिचय नहीं है वह बाहरमें ही तो रुचि करेगा। बाहरमें हैं अनेक पदार्थ, अनेक तत्त्व, सो कभी किसी की रुचि कभी किसीकी रुचि, यों उसका रुचिभेद चलता रहेगा। अज्ञानी जीवने अपना प्रोग्राम बनाया है बाहरी क्रिया-कलापोंका और ज्ञानी जीवने प्रोग्राम बनाया है मूलमें अपने शुद्ध अन्तस्तत्त्वमें झुकनेका। तब ज्ञानीकी रुचि एक प्रकारकी ही रहेगी और अज्ञानीकी रुचि अन्तरङ्गसे अनेक प्रकारकी चलेगी। अब सुबह हुआ है, भगवानकी पूजा भक्ति करना है, अब

Version 1

आहारका समय हुआ है, शुद्ध विधिसे आहार लेना है। अब सामायिकका समय है। सामायिकमें जो बताया है चारों दिशाओंका वन्दन स्तोत्र पाठका आचरण उनमें रुचि जगे। अपने दिन रातमें जो-जो भी प्रोग्राम हैं व्यवहारधर्मकी भिन्न-भिन्न रुचि जगती रहती है। अपने निजस्वरूपमें लीन न होनेका यह फल मिला।

ज्ञानीकी अभिन्न रुचिका कारण—जैसे किसीके घर इष्टका वियोग हो जाय जो बहुत अभीष्ट था तो उसकी दृष्टि केवल उस इष्टकी ओर ही है। भोजन करे तो भोजन ठीक किया, कहीं कानमें उसने ग्रास नहीं रखा, मुखमें ही रखकर खाया। जैसे और लोग चबाते हैं वैसे ही चबाया लेकिन उसकी रुचि और दृष्टि तो उस इष्ट पुरुषमें है। भोजनमें तो है ही नहीं। उसे कहीं घूमने ले जाइए, घूमता है बागमें और और भी वचनव्यवहार करता है किन्तु रुचि और दृष्टि तो उस इष्टकी ओर है। ऐसे ही समझिये कि इस ज्ञानी जीवको अपने इष्टका परिचय हुआ है, इसका इष्ट है सहज ज्ञानस्वभाव, चैतन्यस्वभाव, शुद्धस्वरूप। और साथ ही उसे यह भी समझमें आया है कि मेरी ही चीज और मुझसे अलग सी बनी हुई है, प्रकट नहीं हो रही है, इसका वियोग है तो ऐसा वह ज्ञानी पुरुष इस व्यवहारधर्मको करता हुआ भी क्योंकि जिसे इस इष्टका परिचय हुआ है उसकी प्रवृत्ति पापरूप नहीं हो सकती। उसका मन, वचन, काय गंदा नहीं हो सकता। सो व्यवहारधर्ममें लग रहा है फिर भी रुचि है चैतन्यस्वरूपकी ओर। अन्तस्तत्त्वकी रुचि जिसने नहीं पायी है वह केवल व्यवहारका ही आलम्बन करता है और कभी वह किसीमें रुचि रखता है, कभी कुछ विकल्प बनाता है, कभी कुछ आचरण करता है। यह उनकी स्थिति है दर्शन ज्ञान और चारित्रके पालनेके प्रसंगमें जब कि ज्ञानी जीवकी रुचि एक स्वभावकी ही है।

एकत्वकी रुचिमें कर्तव्यपरायणता—ज्ञानी जीवका विकल्प एक स्वभावज्ञानके लिए ही है। ज्ञानी जीवका आचरण एक स्वभावविकासके लिए ही है। ज्ञानी जीवके दर्शन, ज्ञान और चारित्रका प्रयोग केवल एकके लिए हो रहा है और अज्ञानी जीवका श्रद्धान ज्ञान और आचरणका प्रयोग भिन्न-भिन्न जुदे-जुदे विषयोंपर चल रहा है। इससे भिन्न साध्य और साधन समझने वाले व्यवहारावलम्बी पुरुषको निरन्तर खेद रहता है, वह निर्वाण नहीं पा सकता है। हम आप इस कथनसे यह शिक्षा लें, एक ही निर्णय बनायें कि शान्तिका उपाय अपने सहज ज्ञानस्वभावकी रुचि करना है, इसमें ही मग्न होना, यह ही शान्तिका उपाय है। इसके सिवाय अन्य कोई भी प्रयत्न शान्तिका उपाय नहीं है।

व्यवहारावलम्बनमें दर्शनाचारका प्रवर्तन—जो केवल व्यवहारावलम्बी हैं उन्हें यह विदित हुआ है कि संसारके संकटोंसे दूर होनेके लिए मोक्ष ही एक अद्वितीय स्थान है और उस मोक्षमें पहुंचनेके लिए ५ प्रकारके आचरण करने होते हैं—दर्शनाचार, ज्ञानाचार,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार। अतः दर्शनाचारका आचरण करनेके लिए वह प्रशम सम्वेग अनुकम्पा और आस्तिक्य गुणोंको धारण करते हैं, कभी समता रखते हैं, किसी घटनाओंमें किसी पक्षमें न जानेकी एक प्रवृत्ति बनाते हैं। कभी वैराग्यदर्शक प्रवृत्तिको करते हैं। सबसे अलग रहना, किसीसे राग न बढ़ाना, यों वह सम्वेग गुणको बढ़ाते हैं, कभी अनुकम्पाका भाव लाते हैं। दुःखी जीवोंको देखकर दयाकी प्रवृत्ति करते हैं, कभी आस्तिक्यका बोझ ढोते हैं। देव, शास्त्र, गुरु हैं, ७ तत्त्व हैं, धर्मके पर्व हैं, धर्मकी क्रियायें हैं इन सबका जैसा आस्तिक्य बने उस प्रकार प्रवृत्ति करते हैं।

व्यवहारावलम्बनमें सम्यग्दर्शनकी दोषनिवृत्तिका यत्न—केवल व्यवहारावलम्बी सम्यग्दर्शनके जो दोष हैं उन दोषोंके टालनेका यत्न रखते हैं। जिनेन्द्र भगवानके वचनोंमें शंका न करना इस ख्यालको रखते हुए जो आगममें बातें आयी हैं, शास्त्रोंमें जो कथन निकलता है उसपर श्रद्धान रखते हैं। उसके खिलाफ कुछ बात सुनना नहीं चाहते हैं। चाहे कुछ तत्त्वके विरुद्ध है या अविरुद्ध, इस ओरका कुछ निर्णय नहीं लिया। शास्त्रमें जो लिखा है वह ठीक है, जो शास्त्रमें नहीं लिखा है वह ठीक नहीं है। यों शंका दोषोंसे भी बचनेका वे यत्न रखते हैं, विषय भोगोंकी चाह नहीं रखते, नीरस भी भोजन करते हैं, किसी भी इन्द्रियके विषयोंमें प्रेम नहीं रखते। गुणी जनोंकी सेवामें, पूज्य पुरुषोंकी सेवामें निरंतर सावधान भी रहते हैं। उनकी सेवा करते हुए ग्लानि नहीं करते। अमूढ़दृष्टिपना होनेके लिए भी अपनी कमर बराबर कसे रहते हैं। कोई बात ऐसी न बन जाय, कहीं कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरुको हाथ न जुड़ जायें, यह मस्तक देव, शास्त्र, गुरुके चरणोंमें ही लगे ऐसा सावधान भी रहते हैं। दूसरोंके दोषको ढांकना, गुणियोंके गुणोंको प्रकट करना, धर्मसे च्युत होने वालेको फिरसे धर्ममें स्थिर करना, धर्मात्माओंसे वात्सल्य रखना और अपने आचरणोंसे धर्मकी प्रभावना करना—इन सब बातोंमें बारम्बार उत्साह भी बढ़ाते रहते हैं। ये सब बातें भली हैं, लेकिन अन्तस्तत्त्वके परिचय बिना शान्तिलाभ नहीं होता है।

मौलिक तत्त्वके अपरिचयमें दृष्टिका बहिर्भ्रमण—आत्माका शुद्धस्वरूप क्या है और इसकी शुद्ध क्रिया क्या है और सहजवृत्ति कैसी है ? इसका स्पर्श नहीं हुआ तब दृष्टि केवल इससम्यग्दर्शनके आचरणके प्रसंगमें बाह्य बनी रहा करती है। यों केवल व्यवहारका आलम्बन रखने वाले सम्यग्दर्शनके आचरणमें बहुत-बहुत यत्न श्रम रखते हैं, फिर भी एक मोक्षमार्गका मौलिक नुक्सा न मिल पानेसे वे बाहर ही बाहर डोलते रहते हैं। इस लोकमें सर्वोत्कृष्ट अबाध, हितकर तत्त्व क्या है, इसकी पहिचान हुए बिना हम कभी विश्राम नहीं पा सकते। हम अपने आपके स्वरूपसे विमुख होकर कहीं भी बाहर किसी प्रकार लगें, किन्तु वहाँ लगने का विषय परपदार्थ होनेसे वह स्थानपर जम नहीं सकता।

Version 1

व्यवहारज्ञानाचारमें कालिक स्वाध्यायका आचरण—केवल व्यवहारावलम्बी पुरुष ज्ञानाचारमें भी बड़ी सावधानी सहित प्रवृत्ति भी रखते हैं। देखो स्वाध्यायके समयमें ही स्वाध्याय करना ऐसा ही वे यत्न रखते हैं। जिन कालोंका निषेध किया गया है—सामायिक के कालमें स्वाध्याय न करना, कोई नगरमें बड़ा उपद्रव हो रहा हो उस कालमें स्वाध्याय न करना, चन्द्रग्रहण सूर्यग्रहणके समय जो लोगोंमें एक क्षोभ मची हुई सी वृत्ति रहती है उस कालमें स्वाध्याय न करना, जब अपने संगसे कोई इष्ट गुरु पुरुष जा रहा हो, विहार कर रहा हो उस कालमें स्वाध्याय न करना, अपने संघके निकट कोई महापुरुष गुरु आ रहे हों उस कालमें स्वाध्याय न करना। बहुत-बहुत स्वाध्यायके योग्य कालोंकी निगरानी है और योग्य कालोंमें ही स्वाध्याय करते हैं। बात ठीक है सो प्रवृत्ति सहज बन जाना चाहिए। जैसे मान लो नगरमें तो कोलाहल मचा है किसी उपद्रवके कारण और यह सिद्धान्त ग्रन्थोंको लेकर बैठ गये हैं तो इसे लोग एक कठोर दिल वाला बतावेंगे, और किसी गुरुजनोंका आना अथवा जाना हो रहा हो और यह धर्मके नामपर एक कोनेमें बैठकर सिद्धान्त ग्रंथ पढ़ने लगे तो इस प्रवृत्ति को तो लोग न जाने क्या कहेंगे? ये ज्ञानाचारकी बातें होनी तो चाहिएँ, पर ये बातें व्यवहारावलम्बीके सहज नहीं बनती हैं, ख्याल कर करके बनती हैं।

व्यवहारज्ञानाचारके अन्य अङ्गोंका पालन—ज्ञानाचारमें बताया है कि बहुत-बहुत प्रकारसे अपनी विनयप्रवृत्ति रखें, विनय बिना धर्म नहीं होता। जैसे लोकके अनेक काम घमंड करके भी किए जा सकते हैं, क्या आत्मानुभवका काम, प्रभुभक्तिका काम घमंड करके किया जा सकता है? यह भक्तिजल, यह आत्मानुभवामृत नम्र मार्ग पाये तो ढल सकता है। इस ज्ञानसमुद्रमें तो नम्रता और विनयकी ज्ञानाचारमें प्रवृत्ति बतायी है, इस अंगको भी बहुत अच्छी तरहसे निभा रहे हैं। केवलव्यवहारावलम्बी साधु कठिन-कठिन उपधानोंको भी कर रहे हैं। ज्ञानाचारकी सेवामें ऐसा उपधान ठान लिया जाता है कि जब तक इस ग्रन्थका स्वाध्याय न कर लिया जाय तब तक अमुक आहार आदिका त्याग रहेगा या सिद्धान्त कार्य के पूर्ण हो चुकने पर कुछ उपधान, विशिष्ट संयम ग्रहण किया जाता है। उसमें भी इसकी प्रवृत्ति सही चल रही है। अपने ज्ञानी जनोंका बहुत-बहुत मान भी करता है। ज्ञानाचारमें बताया है कि अपने गुरुका नाम न छिपाना सो इस ज्ञानाचारके अंगकी पूर्तिके लिए समय-समयपर गुरुनामको भी प्रकाशित करते रहते हैं। यह भी सोचकर कि मैं बहुत समय तक गुरु नाम न बताऊँ तो ज्ञानाचारमें दोष लगेगा। इसलिए जरूरत भी न हो बतानेकी तो भी ख्याल कर करके गुरुनामको भी प्रकाशित करते हैं। शब्द शुद्ध पढ़ना, अर्थ शुद्ध समझना इन ज्ञानाचारके अंगोंमें भी निरन्तर सावधान रहते हैं। ये बातें ज्ञानाचारके अंग हैं, इन्हें करना चाहिए। किन्तु व्यवहारावलम्बी पुरुषको अपने उपयोग को टिकानेका निजमें स्थान नहीं

http://www.jainkosh.org

मिला है और धर्मकी उसे आकांक्षा है तब इन बाह्य अंगोंमें प्रवृत्ति बनाये रहता है।

स्वविधिसे ही शान्तिलाभकी सुगमता—जैसे कोई छोटी गोलीका एक खेल आता है ना, उसको हिलाते रहें, एक निशान है कहीं बीचमें, जितनी बड़ी गोली है उतना ही बड़ा छिद्र है। ढुलकते-ढुलकते गोली उस छिद्रमें पहुंच जाय ऐसा कोई प्लास्टिकका खेल है। बहुत-बहुत हिलाते हैं, पर वह गोली कहींकी कहीं चली जाती है। यत्र-तत्र भ्रमण कर रही है। उसमें बड़ा बल लगाया, बहुत-बहुत हिलाया, उससे कुछ सिद्धि नहीं होती। गोली यदि आसानीसे कभी ठीक विधि बैठ जाय तो धीरेसे ही वह अपनी गल्लमें प्रवेश करती है। ऐसे ही यह उपयोग अपने आपके स्वरूपमें प्रवेश करता है। इसके लिए बड़े श्रम और बड़े उद्योग भरे प्रयत्न क्रियाकांड ये भी उस कार्यमें समर्थ नहीं हो पाते हैं। यह उपयोग जब कभी ठीक विधि बन जाय शान्तिकी योगकी, यहाँ श्रमकी भी आवश्यकता नहीं, किन्तु श्रम दूर करके योग दूर करके, कषाय दूर करके, जब कभी विधि बने तो धीरेसे शान्तिपूर्वक यह उपयोग अपने स्वरूपमें क्षण एकको प्रवेश कर लेता है। ऐसी शान्तवृत्तिकी विधि जिसने नहीं पायी वह धर्मके अंगके लिए ऐसे बड़े बड़े यत्न करता है, तब भी मोक्षमें जिस प्रकार आनन्द है उस आनन्दकी जातिका आनन्द यहाँ नहीं पा सकता है। भैया! आत्मा ज्ञानस्वरूप है। इस ज्ञान-स्वरूप आत्माका जो भी यत्न होगा वह यत्न यदि ज्ञानमय होगा तो ज्ञानस्वरूपसे मिल सकता है, मिलता रहेगा, और यदि बाह्यदृष्टि करके अज्ञानमय यत्न होगा तो अन्तस्तत्त्वका मिलन नहीं हो सकता है।

व्यवहारचारित्राचारमें व्रत समितिका पालन—केवल व्यवहारावलम्बी पुरुष चारित्र ा आचरण करनेके लिए बहुत सावधान बने रहते हैं। चारित्रके अंग १३ हैं। ५ महाव्रत, ५ समिति और तीन गुप्ति—इन १३ अंगोंमें ये व्यवहारावलम्बी पुरुष बड़ी निष्ठा रखते हुए प्रवृत्ति करते हैं। हिंसाका त्याग, झूठका त्याग, कहीं कुछ झूठ न बोला जाय, कभी किसी जीवकी हिंसा न हो सके, कदाचित् देख-भालकर चलनेपर भी किसी जीवकी हिंसा हुई हो ऐसा ख्याल आ जाय या मालूम पड़े तो वे उसका बड़ा प्रायश्चित लेकर अपनेको शान्त बनाना चाहते हैं। चोरीका त्याग, कुशीलका त्याग, परिग्रहका त्याग। इन ५ पापोंसे बहुत बहुत-बहुत बचकर रहना, इस व्रतको रक्षाके लिए जो बातें बतायी गई हैं उनका पालन करना इससे बहुत सावधानी रहती है। ५ प्रकारकी समिति ईर्यासमिति, भाषासमिति, देख-भालकर चलना, हितमित प्रिय वचन बोलना एषणासमिति आहारचर्या निर्दोष विधिसे हो, गृहस्थोंकी एक-एक वृत्ति बड़े निर्दोष ढंगसे देख-भालकर आहार लेना, सामानको देख-भालकर धरना उठाना, पिच्छिकासे कमण्डल पोंछकर उसे साफ स्थानपर धरना, बड़ी सावधानीसे आदान-निक्षेपण सहित चीजोंका धरना उठाना, प्रतिष्ठाना समितिमें भी बड़ी सावधानी है। कभी

Version 1

खकार थूक, नासिकासे मल आ जाय तो पहिले जमीनको पिछीसे शुद्ध करना या देखभाल लेना तब मल डालना, ऐसे ही हर दशाओंमें बड़ी सावधानी रहा करती है।

व्यवहारचारित्राचारमें गुप्तियोंका पालन—गुप्तियोंके पालन करनेका ये व्यवहारावलम्बी पुरुष साधुजन बड़ा यत्न रखते हैं। मनमें कोई दूसरी बात सोचनेमें न आये, मौन रहें, चित्तमें भी शब्दजाल न उठने पायें, शरीर रंच भी हिले डुले नहीं, बोलें नहीं, लक्कड़की तरह ज्योंका त्यों पड़े रहें, बैठे रहें—यों कायगुप्तिमें भी बड़े सावधान हैं। ऐसे १३ प्रकारके चारित्रके अंगोंका सावधानीसे पालन करते रहते हैं। यदि वे केवल व्यवहारावलम्बी साधु हैं अर्थात् उन्हें अपने स्वरूपका परिचय नहीं है, स्वरूपमें विश्रांति पानेकी विधि नहीं आती है, आपके इस निराले अमूर्त चैतन्यस्वरूपमें वे एकत्वको प्राप्त नहीं कर पाते, निराकुल स्थितिका अनुभवन नहीं कर पाते तो यों बाह्यमें बहुत-बहुत सावधानी रखनेपर भी वे बाह्यमें डोलते ही तो रहते हैं। बात इतनी ही तो अन्तरमें है कि अशुभोपयोगी पुरुष अशुभ विषयोंमें डोलते हैं, किन्तु ये साधुजन केवल व्यवहारावलम्बी संत एक शुभ विषयोंमें डोल रहे हैं, लेकिन बाहरमें किसी भी जगह डोला जाय अंतस्तत्त्वसे तो वह अत्यन्त वंचित है ना, तो यों केवल व्यवहारावलम्बी पुरुष चारित्राचारमें भी बड़ी प्रवृत्ति रखते हैं, फिर भी मोक्षमार्गका लाभ नहीं पा रहे हैं।

व्यवहारतपाचारका अवलम्बन—तपाचारके नामपर चूँकि तपाचारसे मुक्ति मिलती है इसलिए इसमें बहुत विशेषरूपसे उद्यमी रहना चाहिए। इस भावनासे अनशन-उपवास करना, भूखसे कम खाना, व्रतपरिसंख्यान-चर्याके लिए उठते हुए अनेक प्रकारके अटपट आखड़ी लिए रहना जिससे अपने कर्मोंका परीक्षण भी होता रहे कि अब कैसे-कैसे पापकर्म मेरे हैं या कम अधिक हैं, अथवा भोजन करनेके लिए विशेष इच्छा नहीं रखते हैं, इस कारण अटपट आखड़ी ले लेते हैं। मिल जाय तो मिले नहीं तो नहीं। यों व्रत परिसंख्यान तपसे निपटते हैं, रसोंका परित्याग करते हैं। एकान्त स्थानमें सोयें, बैठें, उठें, गर्मीमें पर्वतोंपर तपस्या करें, सर्दियोंमें नदीके किनारे तपस्या करें, बरसातमें पेड़ोंके नीचे तपस्या करें, और भी अनेक प्रकारके कायक्लेश करते हैं। इन तपश्चरणोंको करते हैं और इनकी वृद्धिमें उत्साह भी रखते हैं। ये सब काम करनेके हैं, किया जाना चाहिए, परन्तु केवल व्यवहारावलम्बी पुरुषोंको अपने उस चैतन्यस्वरूपका अनुभव नहीं होता जिसमें तपा जाना चाहिए। अपने उपयोगको उस शुद्ध ज्योतिस्वरूपमें रमाना चाहिए, इस तपस्याकी विधि नहीं विदित हुई, अनुभूति नहीं हुई, अतएव इन बाह्य तपश्चरणोंमें बहुत-बहुत यत्न रखकर भी ये साधु पुरुष अपने आपमें शान्तिलाभ नहीं ले पाते हैं। इसी प्रकार अन्तरङ्ग तपश्चरण प्रायश्चित करना, विनय करना, साधुजनोंकी सेवा करना, स्वाध्याय करना, ध्यान करना, इनमें भी अपने मनको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लगाया करते हैं, अंकुशकी तरह संयमन यह मन यहाँसे हटे नहीं बड़ा उद्यम रखते हैं। इतने विविध तपश्चरण करनेपर भी एक अपने अन्तरङ्गका नुक्ता परिचयमें न आये तो ये शान्तिलाभके पात्र नहीं हो पाते।

व्यवहारावलम्बनमें वीर्याचारका आचरण—पंच आचारोंमें अन्तिम आचार है वीर्याचार। सर्व प्रकारके आचरणोंमें अपनी शक्ति न छुपाना, अपनी पूर्ण शक्तिके साथ उन व्रत और तपश्चरणोंमें लगना इसका नाम है वीर्याचार। ये साधुजन अपनी शक्ति नहीं छिपाते हैं। और उन समस्त आचरणोंमें अपनी पूरी शक्तिके साथ व्यापार रखते हैं। यों वे वीर्याचारका भी निष्कपट व्यापार करते हैं, किन्तु केवल व्यवहारका आलम्बन जिनके है वे कर्मचेतनाप्रधानी हैं। धर्म करो, धर्म करो, धर्म करना चाहिए, धर्म करनेका बहुत बड़ा उत्साह जगे। करना क्या? धर्म किया जाता है कि हुआ करता है? इस नुक्तेका परिचय नहीं है। वे क्रियाके करनेमें अपने उपयोगको फंसाये रहते हैं।

व्यवहारपालन करते हुए भी परमार्थपरिचयसे शान्तिपथ गमन—यद्यपि इन क्रियाकाण्डोंका एक लाभ तो यह है कि इससे अशुभ कर्मोंकी प्रवृत्ति बहुत दूर चली गई है, अशुभ कर्मोंकी प्रवृत्तिका निवारण हो गया। लौकिक जनोंकी नाईं विषय कषायोंमें ये नहीं लग रहे, शुभ कर्मोंकी प्रवृत्ति नहीं बन रही है, किन्तु जिन्हें उस ज्ञानतत्त्वकी तो जरा भी सम्भावना नहीं हो रही है जो ज्ञानचेतना समस्त क्रियासमूहोंके आडम्बरसे परे है, दर्शन, ज्ञान, चारित्र की एकताकी परिणतिरूप है, जो केवल ज्ञान ज्ञानको ही चेते, अन्तः ही कुछ किया जानेको पड़ा है इसका समाधान उनके नहीं हो पा रहा है, सो बहुत पुण्य मिला ना उन्हें। उस पुण्यके भारसे उनका चित्त मन्द हो गया है, अलसिया गया है। मोक्षमार्ग जैसे मिलता है उस विधि से चित्तको ज्ञानको न प्रवर्तानेका नाम प्रमाद है, आलस्य है। उस प्रमादसे उनका चित्त मंथरित हो गया है, सो उस पुण्यके फलमें सुरलोक मिल जायगा, देवगति प्राप्त हो जायगी, कोई बड़ा धनिक राजपुरुष हो जायगा, किन्तु वहाँ रहकर भी क्लेशको पा-पाकर उस परम्परामें वह अपने संसारसागरमें ही भ्रमण करेगा, संसार ही बढ़ायेगा। इस प्रकरणसे हमें यह शिक्षा लेनी है कि हम भी अपने पदमें पदके योग्य व्यवहार धर्मको करते हुए भी कुछ अन्तःचिन्तन करते रहें, यह मैं क्या हूं और कैसा यह सहज रहा करता है, इसका चिन्तन और अभ्यास करना है। इस अंतस्तत्त्वके परिचयसे हमें शान्तिका मार्ग मिलेगा।

कर्मकाण्डप्रधानियोंके चरणकरणके सारकी अनभिज्ञता—जो पुरुष व्यावहारिक सत् आचरणके करनेमें ही सावधान रहा करते हैं, आचरणके करनेको ही जिन्होंने प्रधान कर्तव्य मान लिया है वे पुरुष चूंकि स्वसमय और परमार्थके स्वरूपके न जाननेके कारण निजमें अन्तरंग कुछ व्यापार नहीं रखते हैं, अपने आत्माके स्वरूपकी सुध नहीं लेते हैं। अतः संसारसागर

Version 1

में भ्रमण करते हैं। वे पुरुष संसारसागरमें क्यों भ्रमण करते हैं? इसका कारण यह है कि वे इस बातको नहीं जानते हैं कि समस्त आचरणोंके करनेका सार है आत्मानुभव। निश्चय शुद्ध जो वृत्ति है केवल ज्ञाताद्रष्टा रहना, निज ज्ञायकस्वभावका अनुभव करके परम आनन्दरसमें तृप्त रहना, यही है आचरणके करनेका सार। तो व्रत, तप, समिति आदि आचरणोंका जो सार है, लक्ष्य है, उस शुद्ध स्वरूपको न जाननेके कारण इतना बड़ा व्रत तपश्चरण करके भी वे संसारसागरमें भ्रमण करते हैं।

केवल निश्चयावलम्बीकी परिस्थिति—जिस प्रकार व्यवहारका आलम्बन करने वाले निश्चय तत्त्वसे विमुख रहकर मोक्षमार्गसे भ्रष्ट रहते हैं इस ही प्रकार केवल निश्चयनयका आलम्बन रखने वाले व्यवहार आचरणसे तो छूटे हुए रहते ही हैं और निश्चय मर्मकी बात से भी अनभिज्ञ हैं, सो वे भी मोक्षमार्गसे भ्रष्ट रहा करते हैं। केवल निश्चयनयका ही उन्होंने आलम्बन लिया है। आलम्बन क्या लिया है केवल शुद्धताके नामपर बात, गप्प, बकवाद करते हैं। यदि कोई निश्चयनयका वास्तविक मायनेमें आलम्बन ले तो जब तक उसकी निम्न दशा है अर्थात् वह वीतराग नहीं हुआ है, विकल्प चलते हैं तब तक उसकी प्रवृत्ति व्रत संयमके पालनमें ही तो रहेगी, असंयमका आदर तो न होगा। जो लोग निश्चयनयकी बात तो करते हैं, किन्तु उसका भान नहीं है, परिचय नहीं है, अनुभव नहीं जगा, ऐसे केवल निश्चयनयके अवलम्बी अर्थात् निश्चयाभासी पुरुष समस्त क्रियाकाण्डोंके आडम्बरसे विरक्त बुद्धि वाले हैं, वे व्रत तपश्चरणको आदर नहीं देते हैं बल्कि उन व्रत तपश्चरणोंको हेय बताकर स्वयं उससे दूर रहा करते हैं और निश्चयनयके शुद्ध बुद्धकी कथनी करते हुए ऐसी मुद्रा बताते हैं, आधे नेत्र बन्द हैं आधे खुले नेत्रोंसे चर्चा करें। दूसरोंकी दृष्टिमें यह बड़ा शान्त प्रतीत हो, बड़ी शुद्ध तत्त्वकी चर्चा करने वाला है, बड़े शुद्ध मिजाजका है, ऐसा प्रदर्शन करते हैं और अपनी कल्पनाके अनुसार अपनी बुद्धिसे जिस किसी भी तत्त्वको निरखकर बड़े सुखपूर्वक अपना जीवन बिताते हैं, ठहरते हैं, उनकी क्या स्थिति है? सीधे शब्दोंमें यों कह लीजिए कि भिन्न साध्यसाधन भावका तो उन्होंने तिरस्कार ही किया था, व्रत तपस्या संयम नियम इनका तो उन्होंने तिरस्कार ही कर दिया और अभिन्न साध्यसाधन भाव अर्थात् शुद्ध आत्मतत्त्वका अनुभवन उन्होंने पाया नहीं तो यों स्थिति ही होती है उनकी जिसे कहते हैं व्यवहारिक आचरणसे भी भ्रष्ट होता है और आन्तरिक आचरणसे भी भ्रष्ट होता है।

निश्चयाभासीकी एक घटना—एक घटना महाराजजी सुनाते थे कि एक निश्चय एकान्तके वेदान्तके अभ्यासी कथन करने वाले पढ़ाने वाले गुरुजी किसी शिष्यको पढ़ाते थे। तो उस कथनमें तो यही सिखाया जाता कि आत्मा नित्य शुद्ध है, मलिनतासे रहित है, उसमें रागद्वेष नहीं है, रागद्वेष प्रकृतिमें होते हैं अथवा कुछ जैनसिद्धान्तके निमित्तप्रकरणका आड़ लेने

http://www.jainkosh.org
वाले यों कह सकते कि रागद्वेष तो कर्ममें होते है, आत्मामें नहीं होते, आत्मा तो सदाकाल शुद्ध है, यही निश्चय एकान्तकी शिक्षा है। इस दृष्टिमें इसका बहिरङ्गरूप लोग नहीं निरखते हैं कि आखिर वर्तमान परिणमन कैसा है ? तो उन गुरुजी की व्यावहारिक स्थिति बड़ी विचित्र थी। जहाँ चाहे खायें, पियें, जैसा चाहे खायें, अनाप-सनाप व्यवहार था। शिष्य था समझदार। उसने कई बार निवेदन किया, गुरुजी आप यह क्या करते हैं, जिस चाहेकी दूकानदार म्लेच्छ की मांसाहारीकी दूकानपर····। गुरु कहता है क्या है, आत्मा तो शुद्ध है। एक बार मांसाहारी म्लेच्छकी दूकानपर गुरुजी रसगुल्ले खा रहे थे। निश्चयएकान्ती गुरुकी बात सुना रहे हैं। शिष्यको उस समय और कुछ न सूझा, गुरुजी के दो तमाचे जड़ दिए। गुरुजी बोले—अरे यह क्या कर रहे हो ? शिष्य बोला—आप एक मांसाहारीकी दूकानमें रसगुल्ले क्यों खा रहे हैं ? गुरुजी कहने लगे कि ये रसगुल्ले तो शरीरमें गए, आत्मा तो शुद्ध है। तो शिष्य कहता है—महाराज ये तमाचे भी शरीरमें लगे, आत्मा तो आपका शुद्ध है। कुछ भला होनेपर था कि बात समझमें आई। ओह ! तुम ठीक कहते हो बीतती तो सारी बात इस आत्मापर ही है।

निश्चयाभासमें उभयभ्रष्टता—जो निश्चयएकान्तकी बात करता है, व्यवहारआचरण को अत्यन्त हेय कहता है, उसकी प्रवृत्तिसे दूर रहता है और सुखपूर्वक जिसमें लौकिक बड़प्पन मिले, जिसमें आराममें भी दखल न आये, इसी प्रकारसे रहता है उसकी यह स्थिति है कि इतो भ्रष्टः ततो भ्रष्टः। ये व्रत तपस्या आत्मासे भिन्न स्थितियां हैं, आत्मा तो शुद्ध ज्ञायकस्वरूप है, ये हेय हैं, यह तो माना और जिसकी चर्चा कर रहे हैं उस अभिन्न ज्ञानतत्त्वका आत्म-स्वरूपका उसके अनुभव नहीं जगा, तब वे बीचमें ही इतो भ्रष्टः ततोभ्रष्टः बन गए, वे प्रमाद की मदिराके मदसे आलसी चित्त वाले बन गए। पागल पुरुषोंकी भाँति यथातथा आचरण कर रहे अथवा मूर्छित पुरुषोंकी भाँति बेसुध हैं, अपने आपके भीतरका भी प्रकाश नहीं मिला और बाह्य आचरणको तो हेय बता ही रहे हैं। यों वे मूर्छित हुए की तरह अथवा सोये हुए की तरह हैं। जैसे सोया हुआ पुरुष बेकार पड़ा हुआ है, उसे कुछ अपना भान नहीं है, ऐसे ही केवल निश्चयाभासी पुरुषको अपने कर्तव्यका भान नहीं है, किन्तु जैसे लोकमें धनकी तृष्णा वाले धन पानेके लिए ही उत्सुक रहा करते हैं अथवा नेतागिरी अर्थात् सरकारी ओहदों के पानेकी तृष्णामें ही चित्त फंसाये रहते हैं, ऐसे ही शुद्ध बुद्ध आत्माकी चर्चा करके लोगोंमें अपना आत्मसौन्दर्य समझने वाले सुखपूर्वक इस ही भ्रममें बने रहा करते हैं। जैसे कोई बहुत घी मिश्री गरिष्ठ भोजन गरिष्ठ खीर पायस गरिष्ठ भोजनको खाकर जैसे आलसी हो जाते हैं, चित्त पड़े रहते हैं, बेकाबू हो जाते हैं इसी प्रकार ये निश्चयाभासी पुरुष भी प्रमादके भारसे यों बेहोश हो गए हैं।

भ्रष्टाचरणीका व्यामोह—भ्रष्टाचरणीका मन भयानक होता है। मुद्रा तो शान्तिकी

Version 1

है, पर चित्तमें करुणा नहीं है। करुणारहित पुरुष संयम नहीं पाल सकता है। संयमका मूल ही दया है। जिन्हें अपने आपकी भी अनुकम्पा नहीं, परजीवोंकी भी अनुकम्पा नहीं, केवल एक चर्चाका व्यसन लगा है ऐसे उस भयानक मनके कारण उनका तो मोह दृढ़ हो रहा है। जैसे कोई पुरुष शारीरिक वेदना न सही जानेके कारण मरण पसंद करे, उसको आप मोही कहेंगे या नहीं ? मोही है और कोई पुरुष धनका टोटा पड़नेके कारण मरण पसंद करे तो उसे आप मोही कहेंगे कि नहीं ? शायद उससे भी ज्यादा मोही कहेंगे जो शारीरिक रोगकी वेदना न सह सकने से मर रहा हो। उससे भी आप अधिक मोही उसे कहेंगे जो धनके नुकसानके कारण मर रहा है और कोई पुरुष लौकिक यश न बढ़नेसे दुःखी होकर या किसी प्रकार लौकिक यशमें घात हो जानेसे दुःखी होकर मरे तो उसे मोही कहेंगे या नहीं ? सम्भव है कि आप धनके पीछे मरने वालेसे भी अधिक मोही यशघातसे मरने वाले को कहेंगे और कोई पुरुष कुछ बात चर्चा करता हो और लोग उसकी बातको न मानें तो मेरी बात नहीं मानी गई, मेरी बात टाल दी गई, इतनी बातपर कोई मरे तो उसे मोही कहोगे या नहीं ? उसे भी मोही कहोगे और कोई पुरुष धर्मकी चर्चा करके, आत्माके स्वरूपकी शुद्धताकी कथनी करके, उस कथनीके विकल्पोंसे अपनेको महत्वशाली समझकर उस चर्चासे इतनी प्रीति रखे कि लोगोंके बड़प्पनका कारण, सुखका कारण एक उस कथनीको ही मान लिया ऐसी कथनीमें आत्मत्वकी बुद्धि रखने वाला, कथनीके विकल्पमें आत्मत्वकी बुद्धि रखने वाला पुरुष मोही कहलायेगा अथवा नहीं ? मोही है।

आत्मभ्रष्टकी जड़ता— जैसे कोई पुरुष बहुत गरिष्ठ भोजन करके बेकाबू बनकर लेटा रहे, आलसी रहे, इसी प्रकार गरिष्ठ मलाई आदिक भोजन करके, रस रसायन खा-खाकर जो बड़े पहलवान बनकर शरीरके अभिमानसे जड़से बन रहे हैं, दिखनेमें वे बड़े काम कर रहे हैं, वे भी मूढ़ हैं, जड़ हैं, ऐसे ही जो केवल एक शुष्क केवल शुद्धस्वरूपकी चर्चामात्रसे ही अपना कर्तव्यपालन पूर्ण समझते हैं वे तो उस आलसी की तरह हैं और जो इस कथनीका प्रसार करके, प्रसार जानकर अपनेको बड़ा पुरुषार्थी समझकर उस वातावरणसे अपनेको महान मान रहे हैं वे इस देहबल वाले पहलवानकी तरह जड़ हैं। बड़े भयानक भावसे वे अपने आपके साथ छल कर रहे हैं, उनकी बुद्धि भ्रष्ट होनेसे विक्षिप्त हो गयी और जैसे चेतनासे रहित बनस्पति पेड़ जैसे खड़े बेकार हैं इसी प्रकार व्रत तपस्या संयम नियम यम इन सभी को हेय मानकर केवल एक अपने शरीरको ही सुखपूर्वक रखकर चर्चासे एक अपनी प्रशंसा लूटकर जो रहे हैं वे वनस्पतियोंकी तरह एक भाररूप खड़े हुए हैं। अपने लिए तो भार है ही। ऐसे निश्चयाभासी पुरुष मुनीन्द्रोंके द्वारा आचरण किए जाने वाले व्यवहारधर्म कर्मचेतनसे अत्यन्त दूर रहते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देखिये जैसे निश्चयशुद्ध आत्माके ज्ञानसे रहित होकर कोई केवल क्रियाकाण्ड करे तो वे भी सुधबुधसे रहित हैं, इसी ही प्रकार व्रत तपस्याओंसे रहित होकर और रहित ही नहीं किन्तु उनको हेय कहकर ग्लानिसे देखकर केवल एक चर्चामात्रसे ही अपनेको सुखपूर्वक रखे हैं वे भी शुद्ध शिवपथसे भ्रष्ट हैं और कोई व्रत तपश्चरण न करे उससे पुण्य बंध जायगा। पुण्यबंध बुरा है, ऐसी बात मनमें रखकर उससे दूर ही रहा करते हैं और भीतरमें ज्ञानतत्त्वका कुछ अनुभव है नहीं तो उनको दशा भी वही है जैसी केवल व्यवहारावलम्बी पुरुषकी है। ये भी संसारसागरमें भ्रमण करते हैं।

कर्मयोग और नैष्कर्म्यका स्थान—किसी प्रकारका कर्म न करें, कर्मोंके मायने यम, व्रत, नियम, प्रतिज्ञा कुछ न करें। हाँ कुछ न करें, बिल्कुल ठीक है, पर यह इनके लिए ठीक है जहाँ कोई किया कर्म नहीं हैं, ऐसे नैष्कर्म्य ज्ञानस्वरूपमें जो मग्न हो गए हैं, यह स्थिति तो पायी नहीं और व्यवहारिक सत् आचरणोंको हेय मानकर पुण्यबंधके भयसे उनसे दूर रहा करते हैं। सीधी भाषामें यों कह लो कि पुण्यबंधके कामको बुरा समझकर उससे तो अलग रहते हैं और यह साहस उनके नहीं है कि पाप कर्मोंका त्याग कर दें। तब यही निर्णय समझिये उनमें प्रकट और अप्रकट सर्वप्रकारके प्रमाद कषायें भरी हुई हैं। वे वर्तमानमें भी कर्मफलचेतनाको भोग रहे हैं और भावी कालमें ऐसी स्थिति भी पा लेंगे कि जहाँ केवल कर्मचेतना भोगनेकी ही प्रधानता हो। ऐसे स्थावरों तकमें जन्म ले लें। इस प्रकारके अलसियाये हुए ये निश्चयावादी पुरुष केवल पापोंका ही बंध करते हैं। इस प्रकरणमें बात यह दिखाई गई है कि करने योग्य बात यह है कि लक्ष्य बनाये अपना शुद्धस्वभावमें मग्न होनेका और इसीके लिए प्रयत्न करें। इसके अपात्र बन जायें, ऐसी कोई परिणति न करें। पापोंमें लगनेकी परिणति आत्मानुभवकी अपात्रताका निर्माण करती है। पापोंसे दूर रहें वही हो गया संयम, वही हो गया नियम, वही हो गया व्रत।

निश्चय व व्यवहारके विरोधमें अलाभ—निश्चय और व्यवहार दोनोंका विरोध न रखकर जब-जब जिस पदमें जितना व्यवहार रहता है उस व्यवहारमें रहते हुए निश्चय शुद्ध तत्त्वकी मुख्यता और लक्ष्य रखते हुए धर्मका आचरण करें, किन्तु जो इन दो बातोंमें से केवल व्यवहारका ही एकान्त रखते हैं, न उनको शान्तिलाभ है और जो व्यवहार आचरणका विरोध करके केवल एक चर्चा कथनीका ही अनुराग रखते हैं, न उन्हें शान्तिलाभ है। निश्चयका आलम्बन करने वाला अगर निश्चयसे निश्चयको जान रहे हैं तब तो उनसे महान और कौन है, पर निश्चयसे निश्चयको जान तो नहीं रहे हैं, उस तत्त्वका अनुभव तो नहीं किया है, किन्तु एकान्त निश्चयका आलम्बन बना लें, वे उन आचरणोंके करनेका तो नाम भी नहीं लेते, बाह्य आचरणोंमें आलसी बने रहते हैं तो वे वास्तविक जो आध्यात्मिक आचरण है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसका भी विनाश कर डालते हैं।

आत्मतत्त्वके अपरिचयीका कथनप्रसंग—जैसे किसी पुरुषने मिश्री नहीं खायी है, उसके स्वादका परिचय नहीं है, किन्तु साहित्यिक कला उसकी ऐसी है कि उस मिश्रीके स्वादका बहुत-बहुत वह वर्णन कर सकता है। देखो भाई मिश्री बहुत मीठी होती है, कैसी मीठी होती है? देखो—तुमने गन्ना तो चूसा ही होगा ना? हाँ हाँ। गन्नेके चूसनेमें जो स्वाद आता है उससे अधिक स्वाद रस पीनेमें आता है और रसको गाढ़ा कर लिया जाय तो उसमें अधिक मिठास है, और रसका मैल हटाकर गुड़ बनाया जाय तो देखो उस मीठेपनका बाधक मैल था, वह मैल निकाल दिया तो उसमें मीठापन बढ़ा ना? हाँ बढ़ा। उस गुड़के मैलको भी निकालकर शक्कर बना ली जाय तो उसमें और ज्यादा मीठापन है, और उस शक्करका भी मैल निकालकर मिश्री बना ली जाय तो वह तो सबसे अधिक मीठी है। सुन-सुनकर इतनी बातें कर लेनेपर भी जिसने मिश्रीका स्वाद आज तक भी नहीं लिया तो कथनीके करनेसे मिश्रीके स्वादका अनुभव तो न हो जायगा। ऐसे ही जिसकी अनन्तानुबंधी कषायें शिथिल नही हुई हैं, उपशान्त नहीं हुई हैं, अतएव पर्यायकी पकड़ जिनकी नहीं गई है, जिस किसी भी अनात्मतत्त्व में यह मैं हूं, मैं अमुक ही नाम वाला तो हूं, इतने ही बच्चोंका बाप तो हूं, अमुक नगरीका रहने वाला ही तो हूं, और मैं कौन हूं? जिस किसी भी पर्यायमें आत्मबुद्धि जिसकी बनी हुई है, आत्मतत्त्वका कभी अनुभव नहीं किया वह अपनी साहित्यिक कलाके बलसे उस आत्मतत्त्व का कितना ही वर्णन कर ले युक्तिसे, अनुमानसे, फिर भी आध्यात्मिक आचरण, स्वरूपाचरण आत्मानुभूति तो उनके नहीं जगती।

आवश्यक ज्ञान और आचरण—भैया! जिसे छूटना है संकटोंसे उसका छूटा हुआ ही स्वभाव है ऐसा जब तक अनुभवमें न आये तब तक छूटनेका उपाय कैसे बनेगा? तब जैसे केवल व्यवहारके आलम्बनमें शान्तिलाभ नहीं है ऐसे ही केवल निश्चयनयके आलम्बनमें भी शान्तिलाभ नहीं है। अतः निश्चय और व्यवहारका विरोध न करके धर्मके आचरणमें चलें तो उस प्रवृत्तिमें वीतरागता बनेगी और वीतरागता होनेसे ही ये संसारके समस्त संकट दूर होंगे। एतदर्थ अविरोधपूर्वक अपना ज्ञानार्जन और आचरण दोनोंमें बराबर यत्न होना चाहिए। गृहीतमिथ्यात्व, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ व इन्द्रियोंके विषयोंकी वाञ्छा व अन्य अभिलाषाओंसे विरक्त होना—यह तो सदाचरण करना ही चाहिये। इसमें तो व्यवहारव्यवस्था भी है और आत्मविशुद्धि भी है। इन आचरणोंके करनेपर भी अपने आपके सहजस्वरूपकी रुचि व आचरण करना मौलिक कर्तव्य है।

निश्चयमोक्षमार्ग व व्यवहारमोक्षमार्गकी एकाधिकरणता—मोक्षमार्गमें चलने वाले पुरुषोंकी पद्धति दो तरहकी होती है—एक निश्चयमोक्षमार्ग और दूसरी व्यवहारमोक्षमार्ग।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहीं इसका मतलब यह नहीं है कि निश्चयमोक्षमार्ग भी मोक्षको देता है और व्यवहार-मोक्षमार्ग भी मोक्षको देता है। यह भी अर्थ नहीं है कि कोई पुरुष व्यवहारमोक्षमार्गसे गुजरे बिना केवल निश्चयमोक्षमार्गसे चलकर मोक्ष पहुंचे या केवल व्यवहारमोक्षमार्गसे चलकर मोक्ष पहुंचे, पुरुष वह एक ही है और उसका अन्तरङ्गमें निश्चयसम्यग्दर्शन, निश्चयसम्यग्ज्ञान व निश्चयसम्यक्‌चारित्रका आविर्भाव होनेसे वह मोक्षमार्गी है, किन्तु साथ ही ऐसे उस निश्चयमोक्षमार्गका आरम्भ करने वाले पुरुषके पूर्वबद्ध रागका अवशेष है, अतः उस रागके उदयमें रागमयी प्रवृत्ति होती है। वह प्रवृत्ति किस तरह होती है ? उस रागके समयमें यह ज्ञानी पुरुष श्रद्धानका किस प्रकार प्रयोग करता, ज्ञानका किस प्रकार प्रयोग करता और चारित्रका किस प्रकार प्रयोग करता है, बस इस विशेषताका नाम है व्यवहारमोक्षमार्ग। इसी कारण इन दोनोंका परस्पर अविरोध रखकर जो ज्ञानी मोक्षमार्गमें चलता है वह अपने उद्देश्यमें सफल होता है।

पक्षाग्रह व निष्पक्षताका अधिकारी—जो कोई केवल व्यवहार एकान्त मानकर चलते हैं उनकी क्या परिस्थिति होती है, यह दिखा दी गई और जो केवल निश्चय एकान्तपर चलते हैं उनकी क्या परिस्थिति होती है, वह भी बतायी गयी है। ये दोनों ही एकान्ती संसारसागर में भ्रमण करते हैं, परन्तु जो पुरुष अपुनर्भवके लिए अर्थात् फिर भव धारण न करना पड़े ऐसी परिस्थिति पानेके लिए नित्य उद्योगशील हैं अतएव महाभाग हैं, पुण्य पुरुष हैं वे निश्चय और व्यवहार इन दोनोंमें से किसी एकका आलम्बन न लेनेसे अर्थात् किसीको प्रधान न बनाने से अत्यन्त मध्यस्थीभूत हैं, और वे ज्ञानी पुरुष निश्चय व्यवहारके अविरोधपूर्वक आचरण करके मुक्तिको प्राप्त कर भी लेते हैं और जो किसी एकान्तमें अपना उपयोग फंसाये हैं, जैसे मान लो कोई व्यवहार एकान्तवादी है तो उसके समक्ष निश्चयतत्त्वकी चर्चा रखें तो उसे बड़ी कड़वी लगती है, सुनना नहीं चाहता है, क्रोध करने लगता है। हालांकि जो बात निश्चयनयसे रखी जायगी वह गलत नहीं है, किन्तु व्यवहारएकान्तका परिणाम होनेसे उसे सही बात सुहाती नहीं है, और कभी-कभी तो यह जानकर भी कि ये सब बातें सत्य हैं, तत्त्व यही है जानते हुए भी उसके विरुद्ध बोलना पड़ता है और उसका निराकरण करता है। इतने विकट पक्षकी स्थिति बन जाती है। व्यवहारैकान्तपक्षकी तरह जो निश्चयएकान्तको पसंद करते हैं, निश्चयएकान्ती हैं वे व्यवहारके व्रत तपकी क्रियाएँ सुनकर या व्रत तपका कोई आचरण करता हो तो उससे घृणा करते हैं, ऐसे विकट पक्षकी स्थिति निश्चयएकान्तवादियों के भी हो जाती है, मध्यस्थता नहीं आ पाती है। व्यवहारवादीको भी देख सके, सुन सके, निश्चयवादीको भी देख सके, सुन सके, ऐसी मध्यस्थ स्थिति नहीं हो पाती है।

अपुनर्भवके उद्यमीकी भावना—जो वास्तवमें अपुनर्भवके लिए उद्यमी हुए हैं, ईमान-

Version 1

दारीसे अपने अंतःकरणसे जो अपने आत्मकल्याणके लिए उद्यमी हुए हैं उन्हें किसीका पक्ष नहीं सुहाता है। उन्हें आत्मकल्याण ही चाहिए। वे जानते हैं कि यह पुरुष मायारूप है, कुछ क्षणको इसका समागम है, अन्तमें यह भी विघट जायगा, हम भी विघट जायेंगे। इस समुदायमें हमें क्या सुनना, क्या पक्ष रखना? इनमें अपनी बात मनानेका क्या हठ करना? जब यह मैं मनुष्य स्वयं न रहूंगा तब इतने दुर्लभ अवसरको कहाँ एकान्तके विषमें ढालकर बरबाद करना? उसके आत्मकल्याणकी भावना रहती है। वह हम सब पुरुषोंमें मध्यस्थ-रहता है। यह आत्मकल्याणार्थी पुरुष शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मतत्त्वमें स्थिर रहनेके लिए सावधान रहा करता है।

अपुनर्भवार्थीकी अन्तर्बाह्यवृत्ति—एकान्तियोंकी दृष्टि बाहर ही रहा करती है, वे अंतस्तत्त्वका स्पर्श नहीं करते, किन्तु यह मध्यस्थ पुरुष, यह आत्मकल्याणार्थी पुरुष चैतन्य-स्वरूप आत्मतत्त्वमें स्थिर रहनेके लिए लालायित रहता है और इसी कारण जब कभी प्रमाद की परिणति जगती है तो उस प्रमाद भावको दूर करनेके लिए शास्त्रकी आज्ञानुसार क्रिया-कांडोंको भी करता है। किसी भी प्रकार मेरा आत्मा पवित्र लक्ष्यकी ओर बना रहे, इसकी सिद्धिके लिए व्यवहारिक क्रियाकांडोंको भी ग्रहण करता है। कहीं यह प्रमाद और रागभाव हमें उल्टे मार्गमें न ले जाय उन सब उपद्रवोंसे बचनेके लिए यह ज्ञानी व्यवहारचारित्रका भी पालन करता है और इन क्रियाकाण्डोंके पालनके माहात्म्यसे उन प्रमादभरी वृत्तियोंको दूर करता है।

आत्महितार्थीकी धुन—इस आत्महितार्थीके तो केवल यही धुन समायी है कि मेरा यह ज्ञानस्वरूप यथार्थरूपमें रहा करे, मुझे और कुछ न चाहिए, मुझे लोगोंमें कुछ नहीं जंचाना है, ऐसे विशुद्ध भावोंसे निश्चय और व्यवहार इन दोनोंके अविरोधके कारण यह ज्ञानी जीव, कल्याणार्थी जीव मध्यस्थ बना हुआ है। उसका निरन्तर उद्योग यही रहता है कि समस्त योग्यता समस्त शक्तिको लेकर निज आत्माको आत्माके द्वारा आत्मासे ही संचेतन करनेका उद्यमी रहा करे। विकल्प टलें, निर्विकल्प स्थिति बने, इसके लिए यह अन्तरङ्गमें देखता भी रहता है। यह ज्ञान अपनी ओरमें आये। अपने मूलमें कितना आ रहा है, आने दो और यह ज्ञान इस ज्ञानस्वरूपमें मग्न हो जाय, इस तरहकी वृत्तियोंको वह तकता रहता है और यत्न करता रहता है कि यह ज्ञान अब अपने आपमें मग्न होने वाला है, उसका ही एक मौन यत्न करता है। यह उसके भीतरमें स्थिति रहती है।

अपुनर्भवके उद्यमीके पुरुषार्थका आरम्भ—अपुनर्भवका उद्यमी पुरुष अपने अंतः प्रयत्न के द्वारा स्वतत्त्वमें विश्राम करता है। जैसे-जैसे उसका निज ज्ञानस्वरूपमें विश्राम होता है, पक्ष मिटता है, रागद्वेषकी वृत्तियां समाप्त होती हैं, अपने आपमें ज्ञानानुभव करता है, विशुद्ध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org
स्वाधीन आनन्द जगता है वैसे वैसे ही ढंगमे कर्मोंका भी वह निर्जरण करता रहता है। १४ गुणस्थान जो बताये गये हैं वे सम्यक्त्व और चारित्र गुणकी विशेषताकी स्थिति बताया करते हैं। संसारके प्रायः सभी जीव मिथ्यात्व गुणस्थानमें पड़े हुए हैं। मिथ्यादृष्टि जीवके किसी भी प्रकारके कर्मोंका सम्वर नहीं होता और मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत निर्जरा भी नहीं होती। हाँ यह मिथ्यादृष्टि जीव जब सम्यक्त्वके सम्मुख होता है तो अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण परिणामोंमें लगनेपर अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण परिणामके समय इसके बहुतसे कर्मबन्ध रुक जाते हैं। यद्यपि इस बन्धनके रुकनेका नाम सम्वर नहीं है, लेकिन यह सम्वरकी तरह है। सम्यक्त्वकी सन्मुखताका भी इतना बड़ा माहात्म्य है जिस प्रकृतिका सम्वर छठे गुणस्थान तकमें हुआ करता है, ७वें गुणस्थान तकमें हुआ करता है। प्रायः कई उन प्रकृतियों का सम्वर नहीं, किन्तु बन्धनिरोध यह मिथ्यादृष्टि सम्यक्त्वके सन्मुख होनेपर कर डालता है।

मोक्षमार्गी आत्माके संवरकी विशेषता—दूसरा गुणस्थान मिथ्यात्वके बाद नहीं आया करता, किन्तु उपशम सम्यक्त्वसे गिरनेपर आया करता है। किन्तु उपशम सम्यक्त्वके समय जीवके सम्वर निर्जरा चल रही थी, सो गिरनेके बाद दूसरे गुणस्थान तक भी कुछ प्रकृतियोंका सम्वर चलता रहता है। जो सम्वर दूसरेमें है वह तथा और भी विशेष सम्वर तीसरेमें है, फिर ज्यों-ज्यों गुणस्थान बढ़ते हैं त्यों-त्यों सम्वर भाव बढ़ता है और निर्जरा बढ़ती है। वह क्या है? जैसे-जैसे यह आत्मा निज ज्ञानस्वरूपमें विश्राम लेता रहता है वैसे ही वैसे कर्मोंका झड़ना बढ़ता जाता है। सब माहात्म्य अपने आपका अपने आपके स्वरूपमें मग्न करनेका है। मोक्षमार्गी पुरुषकी ऐसी आन्तरिक वृत्ति होती है।

अन्तर्दृष्टि व बाह्यदृष्टिके रुचिया—मिथ्यादृष्टि जन बाहर ही बाहर अपनी दृष्टि लगाये रहते हैं। किसी भी क्षण ये अपने आपको छूते भी नहीं। कभी धर्म करनेकी धुन जगे तो भी बाहर-बाहरकी दृष्टि लगाये रहते हैं। धर्मपालनके नामपर देव, शास्त्र, गुरुकी सेवा भी बहुत करते हैं, भक्ति और पूजा भी बहुत करते हैं, पर किसी क्षण ऐसा ही स्वरूप तो मेरा है, ऐसा अनुभव नहीं कर पाते। बाहरी क्रिया-कलापोंसे हमारा उत्थान होगा—यह ही दृष्टि रहा करती है, किन्तु ज्ञानी जीव व्यवहारभक्ति करते हुए भी लक्ष्यमें यही बनाये हुए हैं कि इन ही की तरह मेरा स्वरूप कब विकसित हो जाय ऐसी उनकी दृष्टि होती है।

चैत्यवन्दन—प्रभुमूर्तिके दर्शनके प्रसंगमें भी ज्ञानी और अज्ञानीकी वृत्तिका अन्तर देखिये—ज्ञानी पुरुष मूर्तिके समक्ष दर्शन करते हुए भी जिनकी यह मूर्ति बनायी है, स्थापना की है ऐसे वे प्रभु तीर्थंकर समवशरणमें विराजमान हैं, उनकी उस-उस प्रकारकी घटनाओंको व गुणोंको स्मरण करते हुए वन्दन करते हैं, नमन करते हैं तब अंतस्तत्त्वका अपरिचयी केवल मूर्तिके नाक, आँखको ही निरख-निरखकर ये ही प्रभु हैं, ये ही भगवान हैं, ऐसा देख-देखकर
Version 1

उस ही पर रुचि करते हैं और खुश होते हैं। वह एक मुद्रा है और जिस मुद्राकी स्थापना की है इस स्थापित मुद्राको देखनेसे उस मुद्राका भान होता है तो जिनकी स्थापना है उनके गुणों के स्मरण सहित वन्दन नमन हो वह तो ज्ञानीकी वृत्ति होती है और अज्ञानीकी वृत्ति मूर्तिके नाप-तौलमें अटक जाती है। जैसे बालक भी जानते हैं ये बड़े भगवान हैं, ये छोटे भगवान हैं। छोटी मूर्तिको बच्चे छोटे भगवान कहते हैं बड़ी मूर्तिको बच्चे बड़े भगवान कहते हैं। अरे मूर्ति तो एक मुद्रा है, भगवान न छोटे हैं, न बड़े हैं, सब एक समान हैं। भगवत्स्वरूपका परिचय हुए बिना कितनी ही विडम्बनाएँ बन जाती हैं।

परमस्वार्थ—एक ज्ञानी पुरुष जिसे यदि वह कहा जाय कि यह परमस्वार्थी है तो इसमें कुछ अत्युक्ति नहीं है। यह परम जो स्वमें स्वरूप है उसकी ही निरन्तर चाह करता है। जिसे कहते हैं खुदगर्जी वह खुदगर्जी परमस्वार्थियोंके पास फटक नहीं पाती है। जो स्वरूपार्थी अपने देह इन्द्रिय विषयोंके लिए भी रुचि नहीं रखते वे किसी प्रकारकी आशा खुदगर्जी क्या कर सकेंगे, जिसमें दूसरे पुरुषोंको हानि हो, कष्ट हो। ऐसा यह परमस्वार्थी परमविवेकी परमतत्त्वज्ञानी पुरुष अपने स्वरूपमें विश्राम करता है और उस विश्रामके अनुसार क्रमसे कर्मोंका परित्याग करता है।

निष्प्रमादता व निर्भया मुद्रा—अब ये ज्ञानी पुरुष अपने आत्मामें मग्न होनेरूप परमपुरुषार्थमें परम क्रियामें निष्प्रमाद हो गए हैं। विषयोंमें रुचि जगना, विषयसाधन कमानेके लिए भाग-दौड़ करना, ये सब प्रमाद हैं और मन, वचन, कायकी क्रियावोंको रोककर ज्ञानको अपने ज्ञानस्वरूपमें समा देना, यही निष्प्रमाद अवस्था है। यह पुरुष पूर्ण रूपसे निष्कम्पमूर्ति बन जाता है। इसको अगर वनस्पतियोंसे उपमा दें तो कदाचित् किसी मूडमें दे सकते हैं। वृक्ष भी कहीं भागते नहीं हैं, ये ज्ञानी पुरुष भी दौड़-धूप नहीं मचाते हैं, लेकिन वनस्पति तो कर्मफलका अनुभव करते हैं, किन्तु यह ज्ञानी कर्मफलोंका अनुभव नहीं करता है। और वनस्पतियोंमें सचेतन वनस्पतियोंको उपमा न दें, किन्तु कोरे खड़े हुए ठूठोंसे उपमा दें। ये ऐसे निष्कम्प रहते हैं तो यह उपमा और चोखी रहेगी। देखो ना भैया! तभी तो बनोंमें ध्यानस्थ मुनिके शरीरको हिरण पत्थर समझकर उनसे ही खाज खुजाने लगते हैं। किसी साधु पुरुषसे न कोई पशु डरे, न पक्षी डरे, न अबोध बालक डरे।

ज्ञानीकी बाह्यानिरुत्सुकता—ये ज्ञानी पुरुष कर्मोंके अनुभव करनेमें निरुत्सुक रहते हैं। इनकी दृष्टि केवल स्वयंकी ओर है, सुख दुःख इष्ट अनिष्ट मन, वचन, कायकी चेष्टाएँ इनकी ओर रुचि नहीं है। ज्ञानियोंकी रुचि है अपने आपको अपने आपमें मग्न करनेकी। ये ज्ञानी पुरुष जो अपुनर्भवकी प्राप्तिके लिए उत्सुकता रखते हैं वे केवलज्ञानकी अनुभूतिसे उत्पन्न हुए तात्त्विक आनन्दसे भरे-पूरे रहा करते हैं। सभी जीव कुछ न कुछ अनुभव किया करते हैं,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लेकिन कोई तो इन्द्रियज सुखका अनुभव करते हैं और कोई इन्द्रियज दुःखका अनुभव करते हैं, किन्तु यह मोक्षगामी पुरुष, पूज्य पुरुष मात्र ज्ञानस्वरूपका अनुभव करता है। अनुभवन करनेका तात्पर्य है प्रकर्ष रूपसे किसीको जानते रहना। इसका जब जाननका काम है तो न जाना बाह्यपदार्थोंको, अपने आत्मस्वरूपको ही जानने लगे तो क्या ऐसा नहीं जानेगा? जान लेगा। न जाने बाह्य अर्थोंको, मैं किस रूप हूं, इस स्वरूपको ही जानने लगे वहाँ ज्ञानकी अनुभूतिहोती है। किसी बाह्यको जाननेसे मेरा कुछ प्रयोजन सिद्ध न होगा, मुझे शांति न मिलेगी, ऐसा निश्चय होनेके कारण ये ज्ञानी पुरुष बाह्यको जाननेमें निरुत्सुक हैं।

शाश्वत शब्दब्रह्मफलका भोक्तृत्व—ज्ञानी पुरुष बहिस्तत्त्वको जाननेमें नितान्त निरुत्सुक है अतः अपने आपके जाननेके लिए ही वे उद्यमी रहा करते हैं। अतएव वे शुद्ध आनन्द रससे परिपूर्ण रहा करते हैं। ऐसे ही ज्ञानी पुरुष बहुत ही जल्दी इस संसारसमुद्रसे तिरकर इस शब्दब्रह्मका फल जो ज्ञानब्रह्म है, शाश्वत है उस ज्ञान ब्रह्मस्वरूपके भोक्ता हो जाया करते हैं। सभी चीजें ३ रूपोंमें बाँटी जा सकती हैं—शब्द, अर्थ और ज्ञान। जैसे पुत्रको तीन रूपों में बाँटें—शब्दपुत्र, अर्थपुत्र और ज्ञानपुत्र। आप पुत्रसे प्रेम करते हैं तो यह बताओ कि शब्दपुत्र से प्रीति कर सकते हैं या अर्थपुत्रसे प्रीति कर सकते हैं या ज्ञानपुत्रसे प्रीति कर सकते हैं? पु और त्र ऐसे दो अक्षर लिख दिये जायें उन अक्षरोंका नाम है शब्दपुत्र। कोई इन दो अक्षरोंसे प्रेम करता है क्या? जो दो हाथ पैर वाला घरमें पुत्र है उसे अर्थपुत्र कहते हैं। क्या आप अर्थपुत्रसे प्रीति निभा सकते हैं? वह जुदा पदार्थ है, आप जुदे पदार्थ हैं, आपकी कुछ भी परिणति अन्य पदार्थोंमें नहीं पहुंचती, किन्तु उस अर्थपुत्रको विषय करके जो कल्पनामें समाया हुआ है वह है ज्ञानपुत्र। कल्पनामें परिणत आप उस कल्पनासे प्रीति करते हैं। ब्रह्मको भी तीन रूपोंमें बाँटो—शब्दब्रह्म, अर्थब्रह्म और ज्ञानब्रह्म। आत्माके स्वरूपका नाम है ब्रह्म। ब्रह् और म—ये अक्षर लिख दिये जायें इसका नाम है शब्दब्रह्म अथवा इस शब्दब्रह्मको बतानेके लिए जितने भी ये आगम बने हुए हैं ये सब हैं शब्दब्रह्म। और जो आत्मा है वह अर्थब्रह्म है और उस आत्माके सम्बंधमें जो ज्ञान चलता है वह ज्ञानब्रह्म है। शब्दब्रह्मका तो यह भोक्ता होता नहीं और अर्थब्रह्म यह स्वयं है। तब ज्ञानब्रह्म द्वारा इस अर्थब्रह्मको विषय कर-करके ज्ञानी पुरुष अर्थब्रह्मको भी भोगता है, ज्ञानब्रह्मको भी भोगता है, क्योंकि ये दोनों अभिन्न हैं और निजकी चीज हैं अर्थात् इस तरह ज्ञानमार्ग द्वारा बढ़-बढ़कर यह जीव मोक्षके आनन्दको प्राप्त करता है।

अन्तिम शिक्षण—जिन्हें निर्वृत्ति चाहिए उनका कर्तव्य है कि वे वीतराग बनें, और वीतरागता पानेके लिए निश्चय और व्यवहारका विरोध न करके मोक्षमार्गमें बढ़ते रहें, इससे हम आप सब संसारके संकटोंसे छूट सकते हैं। यह गाथा पञ्चास्तिकायकी उपान्त्य गाथा है।

Version 1

निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्गका विवरण करके श्री कुन्दकुन्द देवने कर्तव्यपालनकी प्रेरणा देते हुए यह कहा है कि जो निर्वृत्तिकी, निर्वाणकी, अपुनर्भवकी इच्छा करते हैं अर्थात् जो संसारके बन्धनोंसे छुटकारा चाहते हैं वे समस्त पदार्थोंमें मोह, राग व द्वेष न करें, क्योंकि वीतराग आत्मा ही भवसागरसे तिरता है। वीतरागताका उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रका पुरुषार्थ है। अतः सर्वप्रयत्नपूर्वक रत्नत्रयकी, अन्तस्तत्त्वकी आराधना करो।

मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिप्पचोदिदेण मया।
भणियं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं सुत्तं ॥१७३॥

ग्रन्थनसमाप्ति सूचना—यह गाथा पंचास्तिकायकी अन्तिम है। इसमें ग्रन्थकारकी क्रियासमाप्तिकी सूचना है और साथ ही ग्रन्थ समाप्त कर देनेके कारण जो एक विश्रांति और शान्ति प्राप्त होती है उसका भी इसमें दिग्दर्शन है। ग्रन्थकार श्री कुन्दकुन्द देवाचार्य कहते हैं–प्रवचनकी भक्तिसे प्रेरित होकर मेरे द्वारा मार्गकी प्रभावनाके लिए पंचास्तिसंग्रह नाम का प्रवचनसार सूत्र कहा गया है।

कर्तृवाच्य और कर्मवाच्यके प्रयोगका अन्तर—बोलनेके वाक्य दो प्रकारके होते हैं—एक कर्तृवाच्य और एक कर्मवाच्य। जैसे मैं पुस्तकको लिखता हूं यह कर्तृवाच्य है। मेरे द्वारा पुस्तक लिखी जा रही है यह कर्मवाच्य है। दोनों प्रकारके कथनमें भावोंका अन्तर है। कर्तृवाच्य तो कुछ गर्व और अहंकारकी ध्वनिको बताता है और कर्मवाच्य अहंकारकी शिथिलताको बताता है। जैसे कहा जाय कि मैंने यह काम बनाया है और इसही को यों कहा जाय कि मेरे द्वारा यह काम बन गया है। अन्तर हुआ भावोंमें और यह कहा जाय कि मेरे निमित्तसे काम बन गया और अधिक अन्तर आ गया। इस गाथामें ग्रंथकार कर्मवाच्यका प्रयोग करके कह रहे हैं—मेरे द्वारा यह पंचास्तिकायसंग्रह कहा गया है।

ग्रन्थयोजनाका कारण परमागमभक्तिकी प्रेरणा—क्यों कहा इस सूत्रको ग्रंथकर्ताने ? तो ग्रंथकर्ता अपना एक विशेषण यों कह रहे हैं कि जिससे निरहंकारताकी और सिद्धि हो जाय। परमागमकी भक्तिसे प्रेरित होकर यह सूत्र मेरे द्वारा कहा गया है। इसमें कितनी ही ध्वनियां लगाते जायें। मैं एक शुद्ध ज्ञायकस्वरूपकर्ता भोक्ताके विकल्पोंसे परे यह मैं ज्ञातादृष्टा आत्मतत्त्व क्या करूँगा, इसका कुछ भी करनेका बोलनेका स्वभाव नहीं है, किन्तु इस आत्मा में लगे हुए रागद्वेष विकारोंसे प्रेरित होकर इस जीवकी चेष्टाएँ चलती रहती हैं। किसीका राग शुभ विषयसम्बंधी होता है, किसीका राग अशुभ विषय सम्बंधी होता है, पर प्रेरणा दोनोंमें बसी हुई है। शुभ रागसे भी प्रेरणा चलती है और अशुभ रागसे भी प्रेरणा चलती है। प्रवचनकी भक्तिसे यह मैं प्रेरित हूं।

प्रवचन और प्रवचनभक्ति—प्रवचन कहते हैं प्रमाणिक वचनोंको। प्रवचन कहो या

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परमागम कहो दोनों एक ही बात हैं। मैं क्यों प्रेरित हुआ प्रवचनपरमागमसे, इसे सुनिये—संसारमें अनादिकालसे भटकते हुए मुझ आत्माको अब तक अनन्तकाल जो व्यतीत हुआ है, अब तक शान्तिके मार्गका पता नहीं पा सका था और अनादिमलिनतावश विषयोंमें सुख है, हित है, ऐसी बुद्धि कर-करके इन विषयोंमें ही लगा रहा था कि जिन विषयोंकी प्रीति अत्यन्त असार है, विषय भी पानीके बबूलेकी तरह अथवा स्वप्नकी तरह एक दिखावट मायारूप हैं, और विषयोंकी चाह भी मायारूप स्वप्नवत् एक विकार आया है। न विषय रहेंगे, न यह इच्छा रहेगी, किन्तु विषयोंकी इच्छा कर जो भोग प्रसंगमें विकार लगाया है उससे जो वासना बनी, पापबंध हुआ, वह भविष्यमें बहुत काल तक चलेगा। इन विषयोंके प्रसंगमें जीवको लाभ नहीं हुआ, न होता, हानि ही हानि सदा रही आयी। अब सौभाग्यवश उत्तम कुल पाया, उत्तम धर्मकी संगति मिली, ऐसे प्रकृष्ट वचन पढ़ने और सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, उससे ज्ञाननेत्र खुले और जिस विपदा विडम्बनामें बहे जा रहे थे, हमको इस आगमका सहारा मिला, इस कारण प्रवचनकी प्रकृष्ट भक्ति उत्पन्न हुई है।

परमागमसे आत्महितकी प्रेरणा—इस परमागममें यथार्थ वस्तुस्वरूपका निरूपण है। कोई भी वैज्ञानिक, कोई भी अन्वेषक खूब युक्तिपूर्वक खोजकर निरख ले प्रत्येक पदार्थ अपने ही सत्त्वसे सहित है, अतएव अपने ही स्वरूपसे है, अपने ही परिणमनसे परिणमता है। किसी एक पदार्थका किसी दूसरे पदार्थके साथ रंच सम्बन्ध नहीं है। इस मोही अथवा मोहभावसे तो यह जड़ ही अच्छा है जिसको किसी प्रकारका आकुलताका विकार तो नहीं उत्पन्न होता। इस मोहीने अब तक वस्तुके स्वरूपके विमुख बन-बनकर कष्ट ही कष्ट सहा। इन अनन्तानन्त प्राणियोंमें से जब कभी किसी भी भवमें जिस किसी भी दो-एक जीवोंको अपना सब कुछ मानकर चला, फल क्या निकला? कोई कभी होता तो है नहीं अपना। किसी परवस्तुको अपना मान लें तो भले मान लो, किन्तु परवस्तु अपनी बनकर रहती नहीं, अपनी इच्छासे परिणमती नहीं तब केवल क्लेश ही क्लेशका अनुभव होगा। जैसे आप किसी पुरुषको अपना मित्र समझ लें और उसपर प्रीति बढ़ा लें, विश्वास कर लें और कभी भी अपने प्रतिकूल बन जाय तो खेद होता है। क्यों खेद हो? यों तो प्रतिकूल सारा जगत है। खेद यों हुआ कि हमने उसे अपना माना और अपने विरुद्ध वह रहा तो यही बात सर्वत्र घटा लीजिए। कुटुम्बको हम अपना मानते हैं पर कुटुम्ब अपना होकर रहता नहीं। उसका जैसा परिणमन है उस अनुरूप होता है तब यह कष्ट सहता है कल्पनाओंका।

परमागमके प्रसादसे ज्ञाननेत्रका उन्मीलन—इस परमागमके प्रमाणीक वचनोंने हमारे ज्ञाननेत्र खोल दिये। मेरा तो देह तक भी नहीं है। कोई क्षण जल्दी ही आनेको तो है ना कि इस देहसे भी न्यारा होकर हम चले जायेंगे। जब देह तक भी मेरा नहीं है तो देहमें

Version 1

उत्पन्न हुए इन्द्रियोंके विकारमें हम क्यों उपयोग फंसायें ? और देह तो यहीं रहेगा, हम पापी बनकर आगे अपनी कुयात्रा करेंगे। तत्त्वकी कौनसी बात है ? इस प्रवचनके प्रसादसे मेरे ज्ञाननेत्र खुले अतएव इसमें तीव्र भक्ति होती है। उस भक्तिसे प्रेरित होकर मेरे द्वारा यह पंचास्तिसंग्रहसूत्र कहा गया है।

मार्गप्रभावना—इस ग्रन्थको कहनेका प्रयोजन भी केवल मार्गकी प्रभावना है। मार्ग मायने है परमेश्वरकी परम आज्ञा। भगवान अरहंत परमेश्वर उनकी जो परम आज्ञा हुई है, दिव्यध्वनिमें जो शासन प्रकट हुआ है उसे कहते हैं मार्ग। यह मार्ग उत्कृष्ट वैराग्य करानेमें समर्थ है। जिन-आगमकी सारभूत बात यह है कि जो राग करेगा सो कर्मोंसे बंधेगा और दुःखी होगा। जो राग न करेगा वह कर्मोंसे छूटेगा और सुखी होगा। गृहस्थोंमें सद्गृहस्थ वह है जो गृहस्थीके प्रसंगमें मध्यमें रहकर भी सदा अपना यह ज्ञान जागरूक बनाये रहते हैं कि मेरा तो जब यह देह भी नहीं है तो ये मिले हुए समागम मेरे क्या होंगे ? घरमें रहना तो जैसे अज्ञानीका बना रहता है, ऐसे ही ज्ञानीका बना रहता है, किन्तु भावोंकी दृष्टिके भेदसे ज्ञानी और अज्ञानी गृहस्थमें बड़ा अन्तर है। जिसका ज्ञान विशुद्ध है उसे आकुलता नहीं हो सकती, जिसका ज्ञान अपने इस विविक्त ज्ञानस्वरूपकी जानकारीसे दूर है वह सदा आकुलित रहता है। तो प्रभुकी परम आज्ञा यही है कि निर्मोह बनो, वीतराग बनो और अपने आपके स्वरूपमें बसे हुए परम आनन्दका भोग करो, आनन्दमय बनो।

परमेश्वरकी परम आज्ञा—भैया ! क्यों व्यर्थमें कष्ट सहा जा रहा है। कुछ मिलता भी नहीं, कुछ साथ भी नहीं, सब न्यारे-न्यारे काम हैं, फिर क्यों परवस्तुवोंसे अनुराग किया जा रहा है, मोह किया जा रहा है ? सबसे विविक्त केवल एक निज चैतन्यस्वरूपकी दृष्टि करें और प्रसन्न हों। परमेश्वरकी यह परमआज्ञा है। उसकी प्रभावना करनेके लिए यह पंचास्तिसंग्रहसूत्र बताया गया है। मार्गकी प्रभावना अर्थात् जिनेन्द्रदेवने क्या हुक्म दिया है, उनका शासन घोषित क्या है उसकी प्रभावना करना हो तो उसका यह ही तरीका है कि खुद ज्ञानी बनकर अपनी ही प्रमाणिक विशुद्ध परिणति बनाकर ख्यापन करें कि भगवानकी जिन-आज्ञा यह है अथवा यथाशक्ति जिन-आज्ञाका पालन करते हुए वस्तुके स्वरूपको बताते रहना यह भी मार्गकी प्रभावना है। सन्मार्गकी प्रभावनाके लिए ही यह पंचास्तिसंग्रहसूत्र बनाया गया है। इस ग्रन्थका नाम तो पंचास्तिकाय संग्रह है, पर विश्लेषण दिया गया प्रवचनसार अर्थात् समस्त वस्तुके तत्त्वोंका सूचक होनेसे प्रवचन तो बहुत विस्तृत होता है, पर समागम द्वादशांग रूप है, किन्तु उसका यह सारभूत है।

प्रवचनके सारकी आवश्यकताका कारण—जैसे बहुत-बहुत बातें होनेके बाद सुनने वाला कहता है कि अब समय थोड़ा है, इसके निचोड़की बात बताइए। तत्त्व क्या है, क्या

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करना है ? अब हमें इस प्रकार परमागम तो बहुत विस्तृत है, पर हे प्रभो ! जीवन थोड़ा है हमें तो सारकी बात बताओ कि तत्त्व क्या है और हमें करना क्या है ? जीवनकी बात देखो तो मानो ८० वर्षकी उम्र हो तो बहुतसा हिस्सा तो बचपनमें निकल जाता है और आधा हिस्सा तो वैसे ही सोनेमें यों निकल जाता है। अन्तका बुढ़ापेका हिस्सा व जवानीमें बनाये गए संस्कारोंके अनुसार चलता है। यदि जवानीमें धर्मसाधन न किया, अज्ञानभावसे रहे तो बुढ़ापेमें भी वह अज्ञान-वासना और बढ़कर चलेगी। जवानीमें धनकी तृष्णामें समय बिताया तो बुढ़ापेमें यह तृष्णा कई गुनी बढ़ जाती है। जिसने अपनी यौवन अवस्थाको ज्ञान और धर्मकी साधनाके लिये, सन्तोषके लिये महत्व दिया उसके बुढ़ापेमें ज्ञान और धर्मकी साधना भी बढ़ जाती है। तो बुढ़ापेमें स्वतंत्रतया कुछ बात नहीं बनती। जो इसने जवानीमें भाव बनाया बस उसका फल बुढ़ापेमें मिलता है। अब सोच लीजिए हमें धर्म कर्म करनेका एक कितना-सा मौका मिलता है ?

कर्तव्यके शीघ्र कर्तव्यकी प्रेरणाके लिये एक किंबदन्तीका दृष्टान्त—एक किम्बदन्ती है कि ब्रह्माने ४ जीव बनाए—मनुष्य, गधा, कुत्ता और उल्लू और सबको जिन्दगी मिली ४०-४० वर्षकी। सबसे पहिले उल्लूसे कहा—जावो तुम्हें पैदा किया।…महाराज हमारा काम क्या होगा ?…अंधे बने बैठे रहना, कुछ मिल जाय तो खा लेना।…महाराज उम्र कितनी ?…४० वर्ष।…महाराज उम्र कम कर दीजिए। अच्छा बीस वर्षकी उम्र कर दी। सो २० वर्ष काटकर तिजोरीमें रख लिया और २० वर्ष दे दिया। कुत्तेसे कहा—जावो तुम्हें पैदा किया।…महाराज काम ?…जो तुम्हें टुकड़े दे उसकी भक्ति करना, पूंछ हिलाना।…महाराज उम्र ?…४० वर्ष।…उम्र कम कर दीजिए।…अच्छा २० वर्ष काटकर २० वर्ष की रक्खी। गधेसे कहा—जावो तुम्हें पैदा किया।…महाराज काम ?…दूसरोंका बोझ ढोना और जो सूखा-रूखा भुस मिल जाय उसे खा लेना…महाराज उम्र ?…४० वर्ष।…उम्र कम कर दीजिए।…अच्छा २० वर्ष काटकर २० वर्ष रख दिये। मनुष्यसे कहा—जावो तुम्हें पैदा किया।…महाराज मेरा काम ?…खूब खेलना, खाना, सब पर हुक्म चलाना और परिवारका सुख लूटना।…महाराज उम्र ?…४० वर्ष।…उम्र कम है महाराज, उम्र और दीजिए।…बस, ४० वर्ष ही रहने दीजिए।…नहीं महाराज, और बढ़ा दीजिए।…अच्छा देखता हूं, यदि तिजोरीमें बची रखी होगी तो और बढ़ा देंगे। देखा तो वह तीनोंकी कटी हुई ६० वर्षकी उम्र बची रखी थी। सो वह ६० वर्षकी उम्र भी मनुष्यको दे दी। अब हो गयी १०० वर्षकी उम्र। सो देखो—जब मनुष्य पैदा होता है तो ४० वर्ष तो उसके ईमानदारीके होते हैं, सो ४० वर्ष तो बड़े अच्छे कटे। चिन्ता करे तो पिता। नया सम्बंध हो, नये पुत्र पैदा हों, बहुत मौज माना। इसके बाद लगी फिर वह गधाकी २० वर्षकी उम्र। इसमें केवल एक

Version 1

रहस्य लेना है। वहाँ गधे कुत्तेसे और कुछ मतलब नहीं है। जब गृहस्थीका बहुत बोझ हो गया तो लादना पड़ा, कमाना पड़ा, अब चैन नहीं मिलती। जब जहाँ भोजन मिला, खा लिया, भाग-दौड़ मच रही। ६० वर्षके बाद फिर हुई कुत्तेकी कटी हुई २० वर्षकी बाकी उम्र। ६० वर्षके बाद चार-छः लड़के हो गए। जिस लड़केने ज्यादा प्रेमसे रक्खा उसके गीत गाने लगा, उसकी प्रीति बनने लगी। फिर ८० वर्षके बाद उल्लूकी कटी हुई उम्र मिली। तो आँखों नहीं दिखता, चलते नहीं बनता, जिसने जैसा खिला दिया, खा लिया। यह स्थिति बनती है। इसमें सारकी बात कहनेकी यह है कि जब तक बल है, जब तक बुढ़ापा नहीं आया, जब तक आसक्ति नहीं आयी तब तक ज्ञान और धर्मके लिए जितना भी यत्न बन सके कर लेना चाहिए।

वर्णनसमाप्ति और विश्रान्ति—इस ग्रन्थमें प्रवचनका सारभूत वर्णन चल रहा है। प्रवचन तो अतिविस्तारमें है वह है द्वादशाङ्गमय परमागम। उसके सारमें ७ तत्त्व और ६ पदार्थोंका निश्चय और व्यवहारकी पद्धतिसे यहाँ वर्णन किया, जिससे इस आत्माको यह प्रेरणा मिली कि समग्र वस्तुएँ अत्यन्त भिन्न हैं, मेरा समग्र परवस्तुवोंमें अत्यन्ताभाव है। किसीसे मुझमें कोई परिणति नहीं आती। किसी अन्य समागमसे कोई हित अथवा सुख नहीं है। मेरा सब कुछ मैं हूं। मेरा स्वरूप ही स्वयं सहज ज्ञान और आनन्दमय है। अपने इस स्वरूपको देखते रहनेकी दृष्टि मिले, यह प्रकाश इसके इस परमागमसे पाया तो परमागममें विशेष भक्ति उत्पन्न हुई। जो हितकी बात बनाये, जो हितमें लगाये उसमें भक्ति विशेष जगती है तो उस प्रवचन भक्तिसे प्रेरित होकर यह पंचास्तिकायसंग्रहग्रंथ बनाया गया है। लो मेरे द्वारा यह कहा गया। ऐसी समाप्तिकी बात यहाँ कही है। जैसे कोई बड़ा काम कर चुकनेपर एक विश्रांति मिलती है। शास्त्रकारने यह भी सूचित कर दिया कि जो इस तरह किया हुआ काम है उसकी जब पूर्ति हो जाती है, अन्त हो जाता है तो कृतकृत्य होकर परमनैष्कर्षरूप जो आत्माका शुद्ध स्वरूप है उसमें विश्रान्ति होती है, यों ये शास्त्रकार भी विश्रांत हो गए।

महापुरुषोंकी निरहङ्कारता—इस ग्रन्थकी आत्मख्याति टीका पूज्य श्री अमृतचन्द्र सूरिने की है। वे टीकाकी समाप्ति करनेपर अपने भाव प्रदर्शित यों कर रहे हैं कि मैंने क्या किया? यह व्याख्या जो की गई है वह मेरे द्वारा नहीं की गई है। जो शब्द अपनी ही शक्तिसे वस्तुके तत्त्वकी सूचना करते हैं उन शब्दोंके द्वारा यह ग्रन्थ बना, यह व्याख्या बनी। यह मैं तो स्वयं गुप्त एक परमार्थदृष्टिसे देखा गया ज्ञानस्वरूप आत्मा स्वयं गुप्त हूं। इस स्वरूप गुप्त मुझ आत्माका क्या कर्तव्य है? बाहरमें कुछ भी नहीं है। इस प्रकार अपने निरहंकारताका प्रदर्शन करते हुए ग्रन्थकारने ग्रन्थकी समाप्तिकी सूचना दी है।

ग्रन्थसे सारभूत शिक्षण—हम इस ग्रन्थके अध्ययनसे यह शिक्षा लें कि हम अन्त-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वृत्ति ऐसी बनायें कि हम जिस किसी भी वस्तुको निरखें तो उसका स्वरूपस्वातंत्र्य हमारी निरखमें रहे। प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वरूपसे सत् है। मेरे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमें ही मेरा सत्त्व है, अन्यत्र मेरा कहीं कुछ नहीं है। न कोई मित्र, न कोई शत्रु, न कोई वैभव, न यह देह और की बात तो जाने दो, मेरेमें जो कल्पनाएँ उठती हैं, रागवृत्तियाँ जगती हैं, विकार भाव बनता है ये भी मेरे नहीं हैं। मैं तो शाश्वत एक चैतन्यस्वरूपमात्र हूं। उस शाश्वत परमार्थ निज तत्त्वकी हमारी दृष्टि अधिकाधिक रहे। बाह्यपदार्थोंमें दृष्टि न फंसे, इसका महत्व हम समझें, ऐसी श्रद्धा, ऐसी वृत्ति हमारी बने तो हम प्रभुके वास्तवमें भक्त हैं। भगवानकी पूजा, भक्ति, उनके उपदेशको सुनकर क्या करना है? सही मायनेमें भक्ति तभी कह सकते हैं जब संसार, शरीर और भोगोंसे वैराग्य प्रकट हो और हमें निज शाश्वत स्वरूपकी दृष्टिकी उमंग जगे।

मोक्षमार्गी शिष्यका निरूपण—यह पंचास्तिकाय संग्रह नामका ग्रंथ है। इसकी समाप्ति पर कुछ थोड़ा इस विषयपर ध्यान देना है कि कुन्दकुन्ददेवने यह ग्रंथ शिष्योंके सम्बोधनके लिए बनाया है। शिष्य किसे कहते हैं? जो शिक्षा ग्रहण करे उसे शिष्य कहते हैं। शिक्षा योग्य पुरुष कौन होता है? उस शिष्यकी कब कब क्या स्थिति बनती है? उस शिष्य के स्वरूप विवरणके लिए जो परमतत्त्वके आराधक पुरुष हैं उनकी अब परिस्थितियां बतायी जा रही हैं। पुरुष कैसे दीक्षा लेते हैं, कैसे शिक्षा ग्रहण करते हैं और कैसी व्यवस्थासे रहते हैं—ये सब बातें काल भेद करके समझनी चाहिएँ। शिष्यके ६ काल होते हैं। काल कहो, परिस्थिति कहो, जिस समयमें जो परिस्थिति हो उस परिस्थितिको यहां काल कहा गया है। एक दीक्षाका काल, दूसरा शिक्षाकाल, तीसरा गणपोषणकाल, चौथा—आत्मसंस्कार, ५ वां सल्लेखना और छठा उत्तमार्थकाल। एक उन्नतिका चाहने वाला पुरुष कैसे-कैसे भावोंसे बढ़ते हुए उन्नतिकी चरम सीमा प्राप्त कर लेता है? यह वर्णन इन छहों कालोंमें है।

दीक्षाकाल—प्रथम तो कोई आसन्नभव्य जिसका होनहार निकट कालमें ही भला होनेको है भेदरत्नत्रय और अभेदरत्नत्रयसे युक्त किसी आचार्यके समीप जाता है अर्थात् जो यथार्थ तत्त्वका श्रद्धानी है, यथार्थ तत्त्वका ज्ञानी है और यथार्थ आत्माका जिसके आचरण है, जो संसार, शरीर, भोगोंसे विरक्त है, जिसे किसी परवस्तुसे कुछ प्रयोजन नहीं रहा, ऐसे आचार्यके समीप जाता है। वहाँ जाकर अपने आत्मतत्त्वकी आराधनाके लिए समस्त बाह्य आभ्यंतर परिग्रहोंको त्याग देता है, जिनदीक्षा ग्रहण करता है वह तो है इसका दीक्षाकाल। जिस समयसे मोक्षमार्गमें इसका प्रयत्न विशेष चलने लगे वह प्रारम्भिक काल है और वह दीक्षासे पहिले शुरू नहीं होता। आत्मतत्त्वकी आराधना करने वाले शिष्य कैसे हुआ करते हैं, इस सम्बन्धमें इस कालमें वर्णन है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शिक्षाकाल—इसके पश्चात् आता है शिक्षाकाल। बहुतसे लोग यों सोच सकते हैं कि ठीक तो यह जंचता है कि पहिले शिक्षा ग्रहण की जाय, फिर दीक्षा ली जाय। यहाँ क्रममें बता रहे हैं कि पहिले दीक्षा होती है, फिर दीक्षा चलती है। यह कैसा श्रम है ? इसके समाधानमें इतना ही समझिये कि किसी भी प्रकारकी शिक्षाका आरम्भ होनेसे पहिले दीक्षा नियमसे सबकी हो ही जाती है। उस दीक्षासे जो कि इसमें बताया है मुनि दीक्षा ले उससे पहले जिस शिक्षाकी जरूरत है उस शिक्षाकी बात नहीं कह रहे हैं। उस शिक्षाके लिए उस योग्य दीक्षा ली जाती है। बच्चोंको देखा होगा जब उन्हें अ इ उ शुरू करते हैं तो विद्या आरम्भकी दीक्षा दिलाई जाती है। दीक्षाका अर्थ इस समय साधुपनेसे न लें, किन्तु जिस विषयका कार्य कराना है उस विषयका संकल्प कराना, लोगोंको हो जाता है—यह दीक्षा है। किसी भी प्रकारकी शिक्षा हो वह दीक्षापूर्वक हुआ करती है। पहिले समयमें यह विशेष परिपाटी थी और कुछ-कुछ आज भी होगी, शुरू शुरूके दिन प्रारम्भिक दिनोंमें जब बच्चोंको अ इ उ सिखानेमें लिए पाठशालामें भेजते हैं तो साथ ही कुछ मिठाई बताशे आदि चीजें साथ ले जायी जाती हैं कुछ बच्चोंको बाँटनेके लिए। वह अ इ उ की शिक्षाकी दीक्षा है और उस दिनसे यह प्रकट हो गया कि अब यह बालक रोज-रोज पढ़ने लगेगा। इस तरह सभी प्रकारकी शिक्षाओं में किसी न किसी रूपमें आप दीक्षा पायेंगे।

दीक्षापूर्वक शिक्षा—जिस शिष्यको एक ऐसी शिक्षा दिलाते हैं जो मोक्षमार्गमें ही बढ़ाये और ज्ञानकी बात सिखाये ऐसी उत्कृष्ट शिक्षाके लिए क्या तैयारी करनी चाहिए शिष्य को, उस तैयारीका नाम यह मुनिदीक्षा है। दीक्षाके बाद निश्चयरत्नत्रय, व्यवहाररत्नत्रय और परमात्मतत्त्वके परिज्ञानके लिए विशुद्ध तत्त्वका प्रतिपादन करने वाले अध्यात्मशास्त्रमें जब यह शिक्षाको ग्रहण करता है तो वह है शिक्षाकाल। इसमें मोक्षमार्गकी विद्या बताते हैं तो उसके अनुरूप ही ये ६ काल कहे जाते हैं।

गणपोषणकाल—शिक्षाके बाद गणपोषणकाल होता है, केवल दीक्षा और शिक्षासे काम नहीं चला। अपने साथमें रहने वाले मित्रजन, इस ही मोक्षमार्गकी शिक्षा दीक्षामें लगे हुए सधर्मीजन, उनमें चर्चा करना, परमात्मतत्त्वके बतानेकी बात करना यही हुआ गणपोषण काल। जैसे थोड़ी देरको इस ओर ध्यान दें जब यहाँ लोगोंने जीवस्थानचर्चा पढ़ी थी, कोई दिन मुकर्रर किया था ना कि इस दिनसे यह प्रारम्भ होगा और उस दिन लोग संकल्प ले करके आये अबसे यह कक्षा चलेगी लघुजीवस्थानचर्चाकी और उस तैयारीके साथ बैठे हुए थे कि नाम लिखायें, संकल्प हुआ, अध्ययन करेंगे, यह अध्ययन करेंगे, यह हुई उस कक्षाकी दीक्षा और उसके बाद फिर शिक्षा चली, लोगोंने पढ़ा, पर केवल इतना पढ़ने मात्रसे काम नहीं निकला तो किसी समय या अन्य समय या रात्रिके समय थोड़ा उसे दुहराने लगे, बताने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लगे, वह हुआ गणपोषणकाल । दृष्टान्तमें जिन्हें शिक्षा द्वारा मोक्षमार्गमें स्थित कराया अथवा उसकी चाह करने वाले भव्य पुरुषोंको उस परमतत्त्वके बतानेसे उनके आत्माका पोषण करना है वह है यही गणपोषणकाल । लौकिक विद्यामें और मोक्षमार्गकी विद्यामें कुछ अन्तर है, लौकिक विद्या पढ़नेके बाद दृष्टि बाहर रहनेका ही काम है करीब-करीब । पर मोक्षमार्गकी विद्याको पढ़ें और उसे अपने ऊपर घटायें तो उसका विशद ज्ञान होता है ।

आत्मसंस्कारकाल—गणपोषण तो हुआ अर्थात् ज्ञानवृद्धिका आदान-प्रदान, पर इतने से काम नहीं निकला मोक्षमार्गमें, तो उसके बाद जो निज परमात्मतत्त्व है उसमें शुद्ध संस्कार बनानेका यत्न होता है । गणको छोड़कर अर्थात् फिर अपने सधर्मीजनोंपर भी दृष्टि न रखकर केवल निज शुद्ध आत्मस्वरूपमें संस्कार बनाना वह है आत्मसंस्कारकाल । अब यहाँ कुछ ऐसी दृष्टिसे सुनते जाइये कि दीक्षा बिना काम नहीं चला, शिक्षा बिना भी नहीं चला, गणपोषण भी आवश्यक हुआ और अब गणको त्यागकर, अपने उन सहयोगी संतजनोंके ख्यालको छोड़कर एक निज परमात्मतत्त्वमें, निजस्वरूपमें मग्न होनेका यत्न करना, उसकी दृष्टिका अभ्यास बनाना यह हुआ आत्मसंस्कारकाल । यहाँ तक बात बनी ।

सल्लेखनाकाल—आत्मसंस्कार कालके बाद उस आत्मसंस्कारको स्थिर बनानेके लिए जो क्षण-क्षणमें उठ रहे रागादिक विकल्प हैं उनका सल्लेखन करना होगा । एक बार ज्ञान प्राप्त होने पर भी और आत्मसंस्कारमें लग जाने पर भी काम अभी रागके खतम करनेका पड़ा हुआ ही है । तो रागादिक भावोंसे रहित अनन्तज्ञानादिक गुणसम्पन्न परमात्मपदार्थमें स्थित होकर रागादिक विकल्पोंका सल्लेखन करना इसका नाम है सल्लेखना काल । कषायों की सल्लेखना की, इस तरह शिष्यकी ये ५ परिस्थिति बताईं ।

उत्तमार्थ काल—सल्लेखनाकालके बाद शुद्ध ज्ञान चारित्र और तपकी प्रयोगात्मक उत्कृष्ट आराधना होनी चाहिए, क्योंकि सब कुछ करनेका प्रयोजन यही था । दीक्षा लेनेका क्या प्रयोजन था ? यह कोई सिद्धिका रूप है ? शिक्षा लेना, अभ्यास लेना, प्रयत्न करना यह कोई सिद्धिका रूप है ? सिद्धिका रूप तो आराधना है और ऐसी आराधना, जिस आराधनाके फलमें मुक्ति अवश्यंभावी है, ऐसी विशुद्ध पद्धतिसे दर्शन, ज्ञान और चारित्रकी उपासना करना यही है उत्तमार्थकाल । जो उत्तम अर्थ है, आत्माका जो उत्कृष्ट प्रयोजन है उस प्रयोजनकी सिद्धि करना । यह आत्मा शुद्ध ज्ञान दर्शनस्वभावी है । जैसे किसी चीजकी परीक्षा करना है तो उसमें यह निर्णय करना कि यह बना कैसे ? इसका स्वरूप क्या है ? इसमें चीज क्या क्या है ? ऐसा आत्मामें सोचिये—प्रत्येक प्राणी मैं मैं का प्रत्यय कर रहा है । मैं हूं, मैं हूं, जिसमें अहंभावना उठ रही है वह मैं किमात्मक हूं ? अपने-अपने अंतरङ्गमें उसकी खोज कीजियेगा । मैं आत्मा क्या हूं, कैसा हूं ? अतः झुकाव करनेसे ही इसका समाधान मिलता

Version 1

है। बाहरी समस्त वस्तुवोंको भूल जानेपर जो एक सहज विश्राम मिलता है, उसमें इसका समाधान मिलेगा। वह समाधान मिलेगा मैं एक ज्ञाताद्रष्टा स्वभाव वाला हूं। इस मुझ आत्माका काम है और क्या ? मात्र जानन देखन। तो विशुद्ध ज्ञानदर्शनस्वभाव वाले अपने आत्मद्रव्यका सही श्रद्धान होना, ज्ञान होना और इस ही स्वरूपमें रम जाना, समस्त बाह्यद्रव्यों की इच्छाका विघात कर जाना, यही है दर्शन आराधन, ज्ञान आराधन, चारित्र आराधन और तप आराधन। ऐसी उत्कृष्ट आराधना होना याने अपने स्वरूपके कुछ सन्निकट होना जिस परिस्थितिके बादमें भवसे मोक्ष हो जाय वह है उत्तमार्थ काल।

षट्कालोंका योग्यतानुसार नियमन—जो परमशिष्य है, निकटभव्य है, तद्भवमोक्षगामी है, उसके जीवनमें ये ६ परिस्थितियाँ आती हैं, किन्तु केवल यह पूर्ण नियम नहीं बनाना कि क्रमसे ये ६ काल सबके आते ही हैं तब मोक्ष होता है यह भी प्रायः नियम है। जैसे प्रायः यह नियम है कि कोई मुनि बने और फिर इस तरह आहारको निकले, इस तरह चले उठे, आदान निक्षेपण समिति, प्रतिष्ठापनासमिति, इस प्रकार बोलें, इस प्रकार आहार ग्रहण करें, ५ समितियोंका यों पालन करें, तपश्चरण करें, ध्यान करें, उसके कर्मोंकी निर्जरा होती है और उसका मोक्ष होगा। कोई यों पूछे—क्योंजी बाहुबलि स्वामीका फिर क्यों मोक्ष हो गया ? उन्होंने न एषणासमिति पाली, न आदाननिक्षेपणसमिति पाली। उन्होंने दीक्षा ली वहीं खड़े रहे एक वर्ष तक। पश्चात् उन्हें मोक्ष हो गया। तो ये सब क्रियायें एक मार्गकी हैं। कितनी अनेक बातोंसे धर्मका प्रयोग करें और मोक्ष हो जाय, पर यह न होगा कि बहुत काल रहें और बिना व्यवहार प्रयोगके वह अपनी साधना बना सके। ये ६ प्रकारके काल कहे गये हैं। इनमें कोई दीक्षा लेनेके बाद ही उत्तमार्थकाल प्राप्त कर ले, न शिक्षा ले, न गणपोषण करे, जैसे भरत चक्रवर्ती दीक्षा लेनेके बाद ही उन्हें केवलज्ञान हो गया, पर यह एक प्रायः करके जैसा नियम न होना चाहिए वह बताया गया है। किसीका भाग्य प्रबल हो, आँखोंसे न दिखता हो और उसे ठोकर लग जाय और ठोकर लगनेसे, पत्थर निकालनेसे धन मिल जाय तो ऐसा सब व्यापारी तो न करने लगेंगे कि अंधे बन जायें, आँखोंमें पट्टी बाँध लें और लाठी लेकर अंधेकी तरह चलें, कोई पत्थर पहिलेसे देख ले, इसमें हम अपने पैरकी ठोकर मारेंगे और फिर खोदेंगे और धन निकलेगा, तो यों तो धन नहीं निकलता। ऐसा हो गया किसीको। तो ऐसे ही जिसकी योग्यता विशेष है वह दीक्षाकालके बाद ही उत्तमार्थकाल प्राप्त कर सकेगा। कोई शिक्षा गणपोषणके बाद कर ले पर नियम ऐसा ही है, किन्तु जो अपनी साधना लम्बी बनाये तो उसके जीवनमें ये ६ प्रकारकी परिस्थितियां आती हैं।

प्रारब्धयोगी और निष्पन्नयोगीकी योग्यता—इससे तात्पर्य यह समझना कि ध्याता २ प्रकारके होते हैं—एक प्रारब्धयोगी, एक निष्पन्नयोगी। जो शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रारम्भ करते हैं उनके सूक्ष्म विकल्प चलते रहते हैं और वे अपनी ध्यानसाधनासे उन विकल्पों से निवृत्त होनेका यत्न कर रहे हैं वे सब प्रारब्धयोगी हैं। और जब ही वे निर्विकल्प शुद्ध आत्मतत्त्वकी अवस्थामें पहुंचते हैं, निर्विकल्प समाधिभावमें आते हैं तो वे निष्पन्नयोगी कहलाते हैं। तो जो आरब्धयोगी हैं उनकी इस प्रकार ६ परिस्थितियां होती हैं और फिर वे निष्पन्न योगी बनकर उत्कृष्ट सम्वर और निर्जरा करते हैं। जब आत्महितमें लगनेसे आत्महितमें ये शिष्यजन जुटते हैं तो पहिली स्थिति उत्कृष्ट स्वाधीन आत्मीय आनन्दके अनुभवकी स्थिति बनती है। मोक्षमार्ग आनन्दसे तो प्रारम्भ होता है और आनन्दमें ही समाप्त होता है। मोक्षमार्ग न कष्टसे प्रारम्भ होता है और न कष्टसे समाप्त होता है। जिसे मोक्षमार्ग मोक्षकी योग्यता, मोक्षका पात्र यह सब कुछ यथार्थ ध्यानमें जंचा है वही पुरुष अपने उपयोगका प्रयोग अपने शुद्ध स्वरूपपर करता है और आनन्दका अनुभव किया करता है। उस आनंदमें जैसे-जैसे वृद्धि होती है वैसे ही वैसे ध्यानकी साधना बढ़ती है। फिर निर्विकल्पस्वसम्वेदन ज्ञानकी प्राप्ति होती है और उसकी वृद्धि होती है। फिर उसके जीवनमें ऋद्धियाँ उत्पन्न होती हैं, ऋद्धियोंकी वृद्धि होती है। उन्हें स्वयं यह विदित नहीं रहता कि मुझे अमुक सिद्धि हुई है, पर आत्मविकासकी पद्धति ही ऐसी है कि वे सब समृद्धियाँ होती रहती हैं।

आनन्दमें धर्मका प्रारम्भ व धर्मकी परिपूर्णता—यह शिवार्थी अन्तमें इस विशुद्ध ध्यानके फलमें शाश्वत असीम आनन्दकी प्राप्ति कर लेता है। यह मोक्षमार्गका कदम आनन्दसे ही तो शुरू होता और आनन्दमें ही समाप्त होता है। जो मनुष्य ऐसा सोचते हैं कि मुझे धर्म करते हुए बहुत दिन हो गए, कोई आनन्द नहीं मिला, दरिद्रता ज्योंकी त्यों रही और विपदायें भी आती रहीं, यह क्या मामला है? मामला क्या है? मामला यही है कि उसने धर्म किया नहीं। धर्म आनन्दसे शुरू होता है और धर्मकी परिपूर्णता आनन्दमें हुआ करती है। अपने निर्विकल्प ज्ञान दर्शनस्वभावी आत्माका स्पर्श करना, यही है धर्म। यह धर्म आनन्दभाव को लिए हुए ही रहता है।

षट्कालोंका व्यावहारिक निरूपण—ये ६ काल आते हैं, उनसे यह हमें ज्ञान होता है कि जो मोक्षमार्गमें उत्कृष्ट शिष्य है उसको किस-किस प्रकारसे चलना चाहिए? मोटे रूपमें व्यवहाराचरणके रूपमें, आगमकी भाषामें उन्हें यों समझ लीजिये कि कोई भी पुरुष निर्दोष पंचाचारका आचरण करने वाले आचार्यके पास पहुंचकर परिग्रहरहित होता है वह तो दीक्षा है। दीक्षाके बादमें जो प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग—चार प्रकारके ग्रन्थोंका अध्ययन करता है वह है शिक्षाकाल और शिक्षाकालके बाद इन अनुयोगोंके व्याख्यान से जो शिष्यसमूहका पोषण करते हैं उनके आत्मामें उत्साह और मोक्षमार्गकी दिशा दिखती है। इस स्थितिका नाम है गणपोषणकाल। गणपोषण होता है भावनासे। तपश्चरणकी भावना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होना, विषय-कषायोंके विजयकी भावना होना, आगमके अभ्यासकी भावना होना, इन सब भावनाओंसे आत्माका संस्कार बनाया जाता है। उस आत्मसंस्कारके पश्चात् अर्थात् ऐसी जिन्दगीभर साधना की, उसके बाद अन्तमें जब मरण निकट होता है, शरीर शिथिल हो जाता है तो वे शरीरको बलिष्ट बनानेका यत्न नहीं रखते, किन्तु आहार आदिकका त्याग रखते हैं। वह सल्लेखना है और पश्चात् समाधिभावसे देहका विसर्जन करना सो उत्तमार्थकाल है। इस तरह अपनेको यों ज्ञानके पोषणमें लगाने वाले शिष्य निर्वाणके निकट पहुंचते हैं।

आत्मकर्तव्य—इस समग्र परिभाषणमें हम आपको यह ध्यानमें लाना है कि ये समागम ही सब कुछ नहीं हैं, ये तो भिन्न ही हैं। हमें अपने आत्मामें ज्ञानसंस्कार बनाना है कि अधिक समय दृष्टि हमारी ज्ञानस्वभावपर रहे और उस दृष्टिके प्रसादसे हम आकुलतावोंसे दूर रहें और अपने आनन्दस्वरूपका अनुभवन करते रहें। भैया ! यह अतीव दुर्लभ धर्मसमागम पाया है, ज्ञानावरणका भी विशेष क्षयोपशम पाया है। इस समस्त धर्मसामग्रीका सदुपयोग कीजिये। श्रद्धावान् होकर ज्ञानका अर्जन करके निज ज्ञानस्वरूपमें मग्न होनेका यत्न कीजिये। इस ही पुरुषार्थसे अपना यह समय सफल होगा।

॥ इति पञ्चास्तिकाय प्रवचन षष्ठ भाग समाप्त ॥

पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज द्वारा रचित
"पञ्चास्तिकाय प्रवचन" का यह षष्ठ भाग सम्पन्न हुआ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com